13

ॐ

श्रीरामेश्वराचार्यविरचिता

श्रीगुरुस्तुतिः

★

प्रभादेवीरचितभाषाटीकोपेता

वि० संवत् २०३३

द्वितीयावृत्ति

मूल्यम् ३)

प्रकाशक :—
ईश्वर आश्रम,
ईश्वर पर्वत, गुप्त गंगा,
श्रीनगर, काश्मीर ।

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक : —
फाइन आर्ट प्रेस,
श्रीनगर, काश्मीर ।
(भारत)

दो शब्द

परम आदरणीय गुरुवर्य श्री ईश्वरस्वरूप की आज्ञा से प्रस्तुत लेखक को श्रीगुरुस्तुति के भाषानुवाद की पाण्डुलिपि पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भाषानुवाद की रचना श्रीप्रभादेवी ने की है और उसका यह प्रयास विशेषकर सुकुमारमति-भक्तजनों का परम-उपकारक होने के कारण अतितरां प्रशंसनीय है।

श्रीगुरुस्तुति वास्तव में चार स्तुतियों का संग्रह है जिसमें श्रीरामेश्वराचार्यविरचित गुरुस्तुति, श्रीजियालाल-कौल-विरचित गुरुपरिचयात्मिका श्रीगुरुपादुकास्तुति, श्रीमहामाहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्तपाद के द्वारा रचित देहस्थदेवताचक्रस्तोत्र और श्रीश्रीज्ञाननेत्रपाद-विरचित कालिकास्तोत्र संग्रहीत हैं। ईश्वराश्रम में आनेवाले शिष्यवर्ग एवं अन्य भी भक्तजनों के उपकारार्थ श्रीप्रभादेवी ने पहिले तीन का सरलतम एवं सहजबुद्धिगम्य भाषानुवाद प्रस्तुत करके एक बडी कमी को पूरा कर दिया है।

प्रातः स्मरणीय ईश्वरस्वरूप के विषय में यहां पर कुछ लिखना पिष्टपेषणमात्र ही होगा, क्योंकि स्वर्गीय श्रीजियालाल कौल ने श्रीगुरुपादुकास्तुति में जितना उनके विषय में स्पष्ट किया है उससे अन्य किसी व्यक्ति के लिये और कुछ लिखने का अवकाश ही। नहीं रहा इसके अतिरिक्त श्रीमहामाहेश्वर अभिनवगुप्त जो अथवा श्रीश्रीज्ञाननेत्रपाद जी के विषय में भी शैवशास्त्र के साथ सम्बन्ध रखने वाले विद्वज्जन पहले ही बहुत कुछ जानते हैं, अतः प्रस्तुत लेखक के लिये उन बातों का लिखना भी चमकते दिनकर को दीप दिखाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। फलतः अवशिष्ट दो लेखकों—श्रीरामेश्वराचार्य और श्रीजियालाल कौल के विषय में ही दो चार शब्द लिखना पर्याप्त होगा।

श्रीरामेश्वराचार्य जी को ईश्वराश्रम में आने वाले बहुत से भक्तजन जानते ही होंगे। इनका जन्म मिथिला में हुआ है और यह संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पडित हैं। व्याकरण एव न्याय जैसे कठिनतम विषयों में आचार्य होने के अतिरिक्त इन्हें वेदों वेदाङ्गों और विशेषकर वेदान्त दर्शन पर अभूतपूर्व अधिकार प्राप्त है। इतने विद्यासमुद्र एवं दर्शनरत्ननिधि का अवगाहन करने पर भी इनको विश्रान्ति रूपी अमूल्य मणि प्राप्त नहीं हुआ था। अन्ततोगत्वा शायद

तीव्र शक्तिपात के कारण ही ईश्वराश्रम में इनका आगमन हुआ। विस्मय की बात यह है कि आश्रम में पहुँचते ही इनपर गुरुकृपा होगई और उन्हें चिराभिलषित विश्रान्तिमणि का लाभ हुआ। विश्रान्तिरस से आप्लावित हृदय से जो उद्गार निकल गये वही गुरुस्तुति बन गई।

स्वर्गीय श्रीजियालाल जी कौल (तालिब) हिन्दी संस्कृत जगत से सम्बन्ध रखने वाले किनके गुरु नहीं रहे हैं और कौन उन से परिचित नहीं। इनका जन्म पहली अक्तूबर १९०२ और निधन १६ जनवरी १९६७ में हुआ। यह हिन्दी तथा संस्कृत के प्राध्यापक रहे हैं और अपने जीवनकाल में संस्कृत अथवा हिन्दी के उद्धार के लिये जो कुछ और जितना कुछ इन्होंने किया उतना और कोई शायद ही कर सकेगा। उनका गम्भीर व्यक्तित्व और स्वभाव की सरलता ही उनके गहरे अध्ययन एवं विशेष गुरुकृपा की परिचायिका थी। उनके सम्पर्क में आकर कोई भी व्यक्ति उनके प्रभाव से अछूता नहीं रह पाता था। भक्तिरस से आघूर्णित होकर उन्होंने गुरुपरिचयात्मिका गुरुपादुकास्तुति की रचना की है जिसमें उन्होंने ईश्वरस्वरूप के जीवन के साथ सम्बन्धित रहस्यों का भी उद्घाटन किया है। उनके आकस्मिक निधन की क्षति को काश्मीर का संस्कृत जगत कभी पूरा नहीं कर सकेगा।

अन्त पर यह दोहराना उपयुक्त ही होगा कि श्रीप्रभादेवी ने प्रस्तुत भाषानुवाद उन पाठकों को दृष्टिपथ में रखकर किया है जिनको संस्कृत की तो बात ही नहीं प्रत्युत हिन्दी के भी बहुत से शब्दों को समझने में कठिनता आती है। इस विषय को लेकर प्रस्तुत लेखक को कई बार प्रभाजी के साथ वाद विवाद भी हो गया परन्तु अन्त पर दोनों इसी निर्णय पर पहुँच गये कि प्रस्तुत भाषानुवाद में जहां तक हो सके कठिन शब्दों का बहिष्कार ही हो। आशा है कि इस दृष्टि से यह भाषानुवाद यथार्थरूप में सुकुमारमति वाले भक्तजनों का उपकार करने में सफल होगा।

प्रो० नीलकंठ गुरुटू
हिन्दी-संस्कृत विभाग
अमरसिंह कालेज
श्रीनगर

श्रीनगर (काश्मीर)
१५-६-१९६८

इस संस्करण के विषय में

संस्कृतभाषा के अनुपमकवि आचार्य रामेश्वर झा रचित "श्रीगुरुस्तुतिः" का यह दूसरा संस्करण सद्गुरुमहाराज ईश्वरस्वरूप के वचनामृत से अमर बने हुए सत्शिष्यों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझ अपार हर्ष हो रहा है। चिरकाल से धार्मिक जनता का अनुरोध इस पुस्तक के पुनर्प्रकाशन के लिए हो रहा था पर कई कठिनाइयों के कारण आजतक सम्भव न हो सका। क्षमाप्रार्थी हूं।

इस संस्करण में ईश्वरस्वरूप महाराज की नव-नवोन्मेषशालिनीसाधना पर आचार्य जी रचित कुछेक नये श्लोक भी दिये हैं जिनमें नवीन-भाव, अर्थ-गाम्भीर्य तथा शब्दसौन्दर्य के कारण, निखर उठा है। इसके अतिरिक्त पुस्तक के अन्त पर विद्वद्वरकी ही लिखी हुई "प्रकीर्णपद्यस्तुतिः" है जिसमें श्रीकृष्ण और जगन्माता दुर्गा की सहज तथा सुन्दरशब्दों में की गई स्तुतिः के साथ २ 'श्रीशाम्बस्तुतिः' भी है, जो अपने में अद्वितीय है। इस स्तुतिः में भगवान् शंकर और पराशक्ति की महिमा का गान एक साथ करके आचार्यप्रवर ने अपने प्रकाण्ड पाडित्य का प्रदर्शन किया है। यदि इन्हें बीसवीं सदी का 'भारविः' कहें तो कोई अत्युक्तिः नहीं होगी।

अन्तपर सतीअनुसूया श्रीप्रभादेवी का धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अपने पास धरे हुए आचार्य जी के इन अप्रकाशित अमूल्यमणियों को जनता के सामने रखने में कोई दुराव तथा हिचकिचाहट नहीं दिखाई।

आशा है कि प्रकाशन प्रतीक्ष्य जनता इस नवीन संस्करण से अत्यधिक लाभान्वित होगी।

प्रो० मखनलाल कोकिलू
हिन्दी-विभाग
गवर्नमेंट डिग्री कालेज
अनन्तनाग

ज्वालाचतुर्दशी
संवत-२०३३

श्री गुरवे नमः

कुतःस्यात्किंलभ्यं निखिलविभबाप्तस्य विदुषो
ममत्वदृष्ट्याहृतसकलदुःखस्य सुभग !
त्वदीयैकादृष्टिः स्वरसभरितास्नेहसरसा
पतत्वस्मिन्दासे बहुतरदिनासक्तमनसि ॥

निरीहोनिष्कायः सपदिलभते सौख्यमतुलं
निराकृत्योद्योगं त्वयिकृतमनाः प्रेमतरसा ।
व्यथन्ते ते लोका विषमपथगाः क्लेशबहुलैः
क्रिया योगज्ञानैः कलयितुमहोत्वामभिरताः ॥

फलं सर्वंतुच्छं जनिमृतियुतं वेद्मिमनसा
ततो देवं नान्यं जगति फलदं स्तौमि विफलम् ।
स्तुवे नित्यं देवं परमपददातारमनिशं
गुरुं शान्तंस्वान्ते स्थितमखिलवाञ्छाहरमजम् ॥

त्वमेवैकः शम्भो ! भवविभवरूपोऽसि भगवन्
त्वमात्मा त्वं देवः सुहृदसुहृदौ मोक्षनिरयौ ।
क्रिया ज्ञानं ध्यानं त्वमसि सकलं तत्फलमहो
स्वतः स्तोतास्त्युत्यो भवसि परमानन्दवलितः ॥

मनाग्भेदोनास्ति त्वयि मयि च दासेऽपि भगवन्
उपादानाद्भिन्नं नहि भवति कार्यं हि भुवने ।
ततो जीवोब्रह्मेत्यपिवदतिवेदोऽपि बहुधा
कथं भेदंकुर्यां त्वमहमितिमिथ्या प्रलपनम् ॥

ॐ
श्रीगुरवे नमः
श्रीरामेश्वराचार्यकृता श्रीगुरुस्तुतिः।

गुरुशक्तिर्जयत्येका मद्रूपप्रविकासिका ।
स्वरूपगोपनव्यग्रा शिवशक्तिर्जिता यया ॥१॥

उस अद्वितीय गुरु शक्ति की जय हो, जिसने मेरे स्वरूप को विकसित किया है तथा जिसने उस शिव-शक्ति को जीत लिया है जो स्वरूप का आच्छादन करने में सदा लगी रहती है॥१॥

यस्य प्रसादादहमेव शम्भु-
र्यस्य प्रसादादहमीश्वरोऽस्मि ।
यस्य प्रसादादहमेव सर्व-
स्तस्मै नमः श्रीगुरवे शिवाय ॥२॥

कल्याण-रूप उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार हो जिनके अनुग्रह से मैं शिव बना हुआ हूं, जिनकी दया से मैं ईश्वर बना हुआ हूं और जिनकी कृपा से मैं सब कुछ अर्थात् विश्वरूप बन गया हूं॥२॥

शैवप्रजाः स्रष्टुमना महेशो
गुरुक्रमेऽभून्मनुदेवरूपः ।
स्तुमो गुरुं तं परमेष्ठिरूपं
साक्षाच्छिवं श्रीमनुदेवमेव ॥३॥

मैं उस परमेष्ठि श्रीगुरुदेव (श्रीमनकाक) की स्तुति करता हूँ, जो साक्षात् शिव ही था, तथा जिसका नाम भी मनुदेव था और जो हमारी गुरुपरम्परा में शैव-संप्रदाय स्थापित रखने की इच्छा रखता था॥३॥

विकल्पशान्त्यर्थमिव प्रवृत्ता-
च्छास्त्रात्सदादूरतमस्वभावे ।
संवित्स्वभावे परिवर्तमानो
दृष्ट्यैव शिष्यानकरोत्स शंभून् ॥४॥

हमारे वह गुरुदेव विकल्पशांति में लगे हुए शास्त्रों के समीपवर्ती संवित्स्वरूप में पूर्णतया ठहरे हुए थे और अपने कृपाकटाक्ष-मात्र से ही अपने समस्त शिष्यों को शिव ही बनाते थे ॥४॥

तत्सिद्धपादप्रभवत्प्रकाशो
माहेश्वरोऽवाप्तशिवात्मभावः ।
श्रीमानभूद्राम इति प्रसिद्धो
यो मद्गुरोः *कौलिकदैशिकेन्द्रः ॥५॥

उस सिद्ध-योगी मनकाक की दया से प्रकाश-स्वरूप बने हुए परमेश्वर के भक्त तथा पूर्ण शिवात्मभाव प्राप्त किए हुए श्रीराम-नाम से सर्वतः प्रसिद्ध तथा विख्यात व्यक्ति हुए थे। वे श्रीराम ही हमारे गुरु देव के कौल-संप्रदाय के गुरु हुए थे ॥५॥

ज्येष्ठोऽप्यसौ मद्गुरुजन्मजात-
हर्षोल्लसद्विस्मृतदेहभावः ।
रामोऽस्म्यहं लक्ष्मण एष जात
इत्येव गायन् सहसा ननर्त ॥६॥

ये श्रीराम जी वृद्ध होने पर भी मेरे गुरु के जन्म से इतने प्रसन्न हुए कि एकाएक देह-भाव को भूलकर "मैं राम हूं तथा यह उत्पन्न हुआ बालक लक्ष्मण है"—यह गाते हुए नाचने लगे ॥६॥

---

*कल्मषरावणारिः- इति पाठान्तरम् ।

शिष्यान् समुद्बोधयितुं स नित्यं
सदातनं स्वस्य शिवस्वभावम् ।
प्रादर्शयद्देहगतं समक्षं
होराश्चतस्रोऽधिगतः समाधिम् ॥७॥

वे श्रीराम जी शिष्यों को भली भाँति बोध कराने के लिए अपने में सदा विद्यमान शिव-भाव को, चार घंटे तक समाधि लगाकर, प्रत्यक्ष-रूप से देह में ही दिखाते थे ॥७॥

कृत्यं विधेयस्य जनस्य शेषं
सप्ताब्दकल्पस्य च लक्ष्मणस्य ।
शिष्यप्रधानं महताबकाकं
निर्दिश्य सोऽगान्निजधाम ॥८॥

अपने अनुग्राह्य शिष्य-जनों का अवशिष्ट बोधन तथा लगभग सात वर्ष वाले लक्ष्मण जी का अवशिष्ट प्रबोधनात्मक कार्य अपने प्रधान शिष्य श्रीमान् स्वामी महताबकाक जी को सौंपकर वे श्रीराम जी अपने शिव-धाम को चले गए ॥८॥

न लक्षणं यस्य न योऽस्ति लक्ष्यः
षडध्वनो योऽस्ति च लक्ष्मभूतः ।
यो लक्ष्मणस्येव च लक्ष्मणस्य
रामो गुरू राम इव स्तुमस्तम् ॥९॥

जिस श्रीराम जी का कोई लक्षण नहीं है, जो किसी के लक्ष्य नहीं हैं, जो षडध्वा (वर्ण-मन्त्र-पद-कला-तत्व और भुवन) रूपी संसार के एक-मात्र प्रधान चिह्न अर्थात् जानने योग्य हैं और जो श्रीराम जी मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम की भांति दशरथनन्दन लक्ष्मण जी के सदृश मेरे गुरु श्रीलक्ष्मण जी के गुरु थे, उसे हम प्रणाम करते हैं ॥९॥

ऊर्जस्य शुक्ले च तिथौ चतुर्थ्यां
जगज्जिगीषून् स्वत ऊर्जयन्तः ।
आविर्बभूवुर्महताबकाकाः
काश्मीरकण्डाभिधजन्मभूमौ ॥१०॥

जगत को जीतने की इच्छा करने वाले अर्थात् संसार-सागर से पार होने वाले शिष्यों को अपने स्वातंत्र्य से ही अनुप्राणित करते हुए, श्री स्वामी महताब काक जी काश्मीर देश के (कण्डिगोम) नामक गांव में कार्तिक-शुक्ल-चतुर्थी के दिन उत्पन्न हुए थे ॥१०॥

तानद्य सर्वे वयमाविशन्तो
गुरून् स्मरन्तो मनसाथ वाचा ।
विशुद्धभक्त्या प्रणता नमामः
स्थितांश्च ज्ञानप्रभयागतानपि ॥११।

आज हम सभी उन्हीं के स्वरूप में समावेश करते हुए तथा मन वाणी से उनका स्मरण करते हुए, शुद्ध भक्ति से उनके चरणों को प्रणाम करते हैं, जो इस लोक से चले जाने पर भी ज्ञान-प्रभा के द्वारा गुरु-रूप से विद्यमान ही हैं ॥११॥

तज्ज्ञानगोत्रे गुरवश्चकासति
ज्ञानप्रभाभिः प्रसृताभिरद्य ।
श्रीलक्ष्मणाख्याः प्रणतां जनानां
दृष्टयैव दृष्टेः तमसां विघातकाः ॥१२॥

उन (स्वामी महताबकाक जी) के ज्ञान-कुल में चारों ओर फैले हुए ज्ञान की प्रभा से देदीप्यमान सद्गुरु श्री लक्ष्मण जी आज भी विद्यमान हैं जो शरणागत-प्रणत-शिष्यों की दृष्टि के अन्धकार अर्थात् अज्ञान को अपनी कृपा-दृष्टि से ही दूर करते हैं ॥१०॥

बिभर्त्ति स्वस्मिन् स्वविमर्शशक्त्या
सर्गस्थितिध्वंसमनारतं यः ।
तमच्छमच्छन्नमनन्तरूपं
श्रीलक्ष्मणाख्यं प्रणमामि वन्द्यम् ॥१३॥

जो अपने में अपनी ही विमर्शशक्ति के द्वारा जगत की सृष्टि, स्थिति तथा संहृति निरन्तर करते रहते हैं, उन्हीं वन्दनीय, निर्मल, प्रकट रूप से विद्यमान तथा अनन्तस्वरूप वाले सद्गुरु श्रीलक्ष्मण जो को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१३॥

प्रकाशरूपस्य चिदात्मनस्ते
स्वातन्त्र्यमेतन्नहि किंचिदन्यत् ।
शिवादिपृथ्व्यन्तसमस्तविश्व-
रूपेण चैकोऽपि विभासि यत्त्वम् ॥१४॥

एकाकी भी आप जो शिव से लेकर पृथ्वी तक सारे संसार के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं वह सब कुछ चिदात्मा एवं प्रकाश-स्वरूप आपकी केवल स्वातन्त्र्य-शक्ति है, अन्य कुछ नहीं है ॥१४॥

त्वय्येव भातः स्मृतिविस्मृती ते
द्वयोरपि त्वं स्वयमेव भासि ।
तथापि सांमुख्यसुखाभिवर्षिणी
स्मृतिः प्रिया ते नहि विस्मृतिर्मे ॥१५॥

हे प्रभु ! यद्यपि आपका स्मरण तथा आपका विस्मरण आप में ही प्रकाशित है और इन दोनों में आप स्वयं प्रकाशमान् हैं तथापि आप के सांमुख्य-सुख का वर्षण करने वाली आपकी स्मृति ही मुझे प्रिय है, विस्मृति नहीं ॥१५॥

वाचा कया त्वामहमीशमीडे
प्रसादये त्वां क्रियया कया वा ।
यतः सदान्तर्मुखभास्वरूपो
न मायिकं पश्यसि किंचिदेतत् ॥१६॥

मैं किस वाणी से आपकी स्तुति करूं और किस क्रिया से आपको प्रसन्न करूं? क्योंकि आप सदा अन्तर्मुख प्रकाश-रूप होने से बहिर्मुख मायिक पदार्थ को देखते ही नहीं हैं। फलतः मेरी वाणी और मेरी क्रिया मायान्तर्गत होने से आपकी स्तुति करने में अथवा आपको प्रसन्न करने में असमर्थ है।।१६।।

स्तुवन्नपि त्वामहमेमि सद्यः
परामृताधायि चमत्कृतिं ते।
तथाप्यविच्छिन्नसुखैकधाम
याचे स्वभावं त्वदकृत्रिमं तम् ।।१७।।

यद्यपि मैं आपकी स्तुति करता हुआ भी आपके परम-अमृत को देने वाले चमत्कार को क्षण-मात्र में ही प्राप्त कर लेता हूँ, तथापि हे अनवच्छिन्न अद्वितीय आनन्द-स्वरूप! मैं आप से, आपके उस अलौकिक अकृत्रिम स्वभाव के लिए याचना करता हूँ।।१७।।

तस्याप्रतर्क्य विभवस्य महेश्वरस्य
पादौ नमामि नयनामृतलक्ष्मणस्य।
देवस्य यस्य महतः करुणाकटाक्षै-
रालोकितोऽहमिह विश्ववपुर्विभामि।।१८।।

मैं उन अकल्पित वैभव वाले, नेत्रों को आह्लादित करने वाले, सर्वैश्वर्य-संपन्न सद्गुरु श्रीलक्ष्मण जी के चरणों को प्रणाम करता हूँ, जिन महान देवता के कृपा-कटाक्ष से प्रकाशित हुआ मैं विश्वात्मा बन गया हूं।१८।

प्रत्यात्मभूतः परमात्मरूपो
नित्यः शिवः सर्वसुलक्षणोऽसि।
लोकैरलक्ष्यो विदुषाभिलक्ष्यो
विलक्षणो लक्ष्मण उच्यसे त्वम्।।१९।

आप प्रत्येक प्राणी का स्वरूप बने हुए हैं। आप परमात्म-स्वरूप हैं। आप सनातन, कल्याणमय तथा शुभलक्षणों से संपन्न हैं। आप सामान्यजनों से जाने नहीं जाते हैं, किन्तु ज्ञानियों के द्वारा ही जाने जाते हैं। आप विलक्षण होने पर भी लक्ष्मण नाम से पुकारे जाते हैं।।१९।।

अनन्तशास्त्रोदधिमन्थनाप्यं
यदात्मतत्त्वं परमामृताख्यम् ।
तद्वर्षिणी यस्य कृपाङ्गदृष्टिः
स त्वं शरण्यः शरणं ममासि ॥२०॥

अनन्त शास्त्र-रूप समुद्र के मन्थन से प्राप्त होने योग्य जो आत्मतत्त्व रूपी परमामृत है, उसकी वर्षा करने वाली जिसकी कृपा-दृष्टि है वही आप शरणागतों के रक्षक मेरी भी रक्षा करने वाले हैं ॥२०॥

शिष्याननेकाञ् जगतः समुद्धर-
न्नासीत्पुरा गुप्तगुरुर्गरीयान् ।
यो लक्ष्मणो लक्ष्मण एष नो गुरुः
पायात्समस्ताञ् शरणागतान् सः ॥२१॥

अनेक शिष्यों को संसार-समुद्र से पार करते हुए जो श्री अभिनवगुप्त जी के गुरु श्रीलक्ष्मणगुप्त जी पूर्व-काल में हुए हैं, वे ही (आज अवतरित हुए) हमारे सद्गुरु श्रीलक्ष्मण जी हम सभी शरणागत-शिष्यों की रक्षा करें ॥२१॥

शिवस्वरूपोऽपि जगत्स्वरूपः
स्वात्मस्वरूपोऽपि परस्वरूपः ।
नित्योऽपि यो नित्यमनित्यरूप-
स्तस्मै नमः श्रीगुरवेऽद्भुताय ॥२२॥

जो शिव-स्वरूप होते हुए भी जगद्रूप हैं, स्वात्म-स्वरूप होते हुए भी पर-स्वरूप हैं, जो सदैव नित्य होते हुए भी अनित्य-स्वरूप बनते रहते हैं— उन अद्भुत श्री गुरुदेव को मेरा प्रणाम हो ॥२२॥

दृष्टप्रभावं परिमुच्य देवं
स्तूयात्कथं दासजनः परेशम् ।
युष्मत्कृपापाङ्गनिपीतपापा
भवन्ति सद्यः पशवो महेशाः ॥२३॥

जिन गुरु-देव का प्रभाव दास-जन प्रत्यक्ष रूप से देख चुके हैं,

उनको छोड़कर वे दास भक्त-जन अन्य दूसरे की स्तुति कैसे करेंगे, क्योंकि पशु समान पापी-जन भी आपके कृपा-कटाक्ष से क्षणमात्र में निष्पाप बनकर शिव-रूप ही बन जाते हैं ॥२३॥

किं वर्णयामो महताञ्च तेषां
भाग्यं भवत्पादरजोऽनुरागिणाम् ।
पुण्यातिसंभारशतैरदृश्यो
येषां भवान् दृक्पथगोचरः शिवः ॥२४॥

जिन महापुरुषों को आपकी चरण-धूलि में अनुराग है, उनके भाग्यों की क्या सराहना की जाये, क्योंकि अनन्त पुण्यों से भी दर्शन में न आने वाले आप शिव-स्वरूप उनके संमुख सदैव विद्यमान रह रहे हैं ।२४॥

श्रीगुरुं तमहं वन्दे कारुण्यरसनिर्भरम् ।
स्वात्मभूतं जगद्भाति यत्कृपापाङ्गपाततः ॥२५॥

मैं दया-रस-पूर्ण उन गुरु-देव की वन्दना करता हूँ जिन के कृपा-कटाक्ष से यह सारा जगत स्वात्मरूप ही दीख पड़ता है ॥२५।

नुमः शारिकया जुष्टं प्रभया परिपूजितम् ।
गुरुरूपधरं देवं लक्ष्मणं शान्तविग्रहम् ॥२६॥

ब्रह्मवादिनी शारिका देवी के हृदय द्वारा जो सुसेवित हैं तथा प्रतिभा-रूप प्रभा से जो पूजित हैं, उन शान्त-स्वरूप लक्ष्मण जी की हम स्तुति करते हैं ॥२६॥

जयत्येको जगत्यस्मिन् गुरुर्मे भोगमोक्षदः ।
मोक्षलक्ष्मीसमाश्लिष्टो जन्मतो यश्च लक्ष्मणः ॥२७॥

इस संसार में भोग और मोक्ष को देने वाले केवल मेरे अद्वितीय गुरु-देव की जय हो, जो जन्म से ही मोक्ष-लक्ष्मी के साथ नित्य-संबन्धित लक्ष्मण नाम से प्रसिद्ध हैं ॥२६॥

नमः श्रीमहसे तस्मै स्वात्मसाम्राज्यदायिने ।
भवबन्धच्छिदे दृष्ट्या नररूपाय शूलिने ॥२८॥

स्वात्म-साम्राज्य को देने वाले उन तेजोमय श्रीगुरुदेव को प्रणाम हो जो दृष्टि-मात्र से ही संसार-बन्धन को काट देते हैं। अतएव मनुष्य-रूप में वे साक्षात् त्रिशूलधारी शंकर ही हैं ।।२८।।

वाचा दृशा तथा कृत्या स्वानन्दरसपूर्णया ।
आह्लादं परमं यच्छन् गुरुः केनोपमीयताम् ॥२९॥

श्रीगुरुदेव स्वात्मानन्द-रस पूर्ण वाणी, दृष्टि तथा कर्म से परमानन्द देते हैं, अतः गुरुदेव की उपमा किस से दी जा सकती है।।२९।।

निखिलैरिन्द्रियैरेभिर्भिन्नवेद्यप्रदर्शिभिः ।
दर्शितः शिव एवैको येन तस्मै नमो नमः ।।३०।।

जिस गुरुदेव ने भिन्न भिन्न शब्द-स्पर्श-रूप आदि विषयों को दिखलाने वाली सारी इन्द्रियों के द्वारा एक शिव को ही दिखाया है, उसको बारम्बार नमस्कार है।।३०।।

स्वानन्दरसकल्लोलैरुल्लसन्नस्म्यहर्निशम् ।
यद्दृष्टिपरिपूतोऽहमाश्रये तत्पदद्वयम् ।।३१।।

जिस गुरु-देव की दृष्टि से पवित्र बना हुआ मैं अपने ही आनन्द-रस-पूर्ण लहरों से अहर्निश (रात दिन) उल्लसित रहता हूं, उसी श्रीगुरु के चरण-कमलों का मैं आश्रय लेता हूं।।३१।।

स्वात्मावमर्शसंलग्ना परासहितवैखरी ।
कृता येन गुरोस्तस्य वाचा कुर्य्यां स्तुतिं कया ॥३२॥

जिस गुरु-देव ने परावाणी सहित वैखरी वाणी को स्वात्म-परामर्श में ही लगा दिया है अर्थात् उसके साथ अभिन्न कर दिया है, उस गुरुदेव की स्तुति मैं किस वाणी से करूं ? ।।३२।।

गुरुस्तुतिपरैवेयं परासहितवैखरी ।
इत्येवं जानतो मे वाक् का न स्तौति गुरुं कदा ।।३३।।

परासहित जो यह वैखरी वाणी है, वह एकमात्र गुरु की स्तुति करने

में ही लगी हुई है—इस प्रकार जानने वाला जब मैं हूं, तब मेरी वाणी भला किस समय गुरु की स्तुति नहीं करती ॥३३॥

शाङ्करी शुद्धविद्येव पूर्णकारुण्यनिर्भरा।
सर्वैश्वर्यप्रदा देवी जयति श्रीगुरुकृपा ॥३४॥

शैवी शुद्धविद्या की भांति जो गुरुकृपा पूर्ण-करुणा से लबालब भरी हुई है और जो सभी ऐश्वर्य को देने वाली है, उस गुरु-कृपा की जय हो ॥३४॥

नमो गुरुं महाकालजन्मग्रासावभासकम् ।
स्वातन्त्र्योद्भासिताशेषघस्मरं लक्ष्मणं प्रभुम् ॥३५॥

सद्गुरु श्रीलक्ष्मण जी अपनी स्वतन्त्रता से सभी जगत को प्रकाशित करते हैं और उसका ग्रास अर्थात् लय करते हैं। इस भांति जो महाकाल के जन्म और विनाश को भी प्रकाशित करने वाले हैं, उन श्रीगुरु-चरणों को हम प्रणाम करते हैं ॥३५॥

दीनोद्धारैककृत्याय करुणागाधसिन्धवे ।
अनेकश्रीलसत्काय लक्ष्मणाय नमस्तमाम् ॥३६॥

जिन गुरु-देव का कर्त्तव्य केवल दीनों का उद्धार करना ही है, जो दया के अथाह समुद्र हैं और जो अनन्त ऐश्वर्य से सुशोभित हैं, उन श्रीगुरु लक्ष्मण जी को शतशः प्रणाम हो ॥३६॥

यस्यां च सत्यामहमेव भामि
सर्वात्मना सर्वविकल्पहीनः ।
यत्नैरलभ्यामतिदुर्लभां तां
श्रीसद्गुरोर्नौमि दयार्द्रदृष्टिम् ॥३७॥

करुणा से आर्द्र बनी हुई सद्गुरु की उस दृष्टि को मैं नमस्कार करता हूं, जो किसी भी यत्न से प्राप्त नहीं की जा सकती है। इसी लिए अज्ञ-जनों के लिए जो अत्यन्त दुर्लभ है तथा जिस दृष्टि के होने पर मैं स्वयं सभी विकल्पों से रहित होकर सब रूप से प्रकाशित हो रहा हूं ॥३७॥

आज्ञा यदीया तु कृपात्मिकैव
स्पन्दात्मिका कालकलाव्यतीता ।
उन्मेषनामास्ति निमेषगर्भा
बिन्द्वात्मिका नादकलास्वरूपा ॥३८॥

विमर्शरूपा समनात्मिका या
प्रकाशजातापि तदात्मिकैव ।
तं नौमि देवं विदुषां वरेण्यं
श्रीलक्ष्मणं व्यक्तसमस्तलक्षणम् ॥३९॥ (युगलकम्)

जिन सद्‌गुरु की अनुग्रहरूप आज्ञा स्वतः ही कृपा-रूप है, स्पन्द रूप है, काल की कल्पना से बहुत दूर है, उन्मेष-रूप होते हुए ही निमेष-गर्भ वाली है, बिन्दु-रूप अर्थात् प्रमातृ-रूप एवं नाद-कला रूप भी है, विमर्श के स्वरूप वाली एवं समना के स्वरूप से युक्त है और प्रकाश से उत्पन्न होकर भी स्वतः प्रकाश-रूप है, उन्हीं ज्ञानियों में श्रेष्ठ, ज्ञान के सभी लक्षणों से परिपूर्ण श्रीमान् लक्ष्मण जी को मैं प्रणाम करता हूं ।। ३८, ३९ ।।

द्रष्टुं स्वकीयपदपंकजमद्वितीय-
दृष्टिस्त्वयैव विहितात्र न संशयो मे ।
किन्तु प्रभो ! यदनयैव समस्तविश्वं
पश्याम्यतः सकलमेव भवत्स्वरूपम् ॥४०॥

हे प्रभु ! आपने अपने चरण-कमलों को दिखाने के लिए मुझे अभेद-दृष्टि प्रदान की है, इसमें मुझे तनिक-मात्र संशय नहीं है। किन्तु ऐसा होने पर भी मैं इसी अद्वैत-दृष्टि से संपूर्ण संसार देख रहा हूं—अतः यह समस्त जगत तो मुझे आपका ही स्वरूप दिखाई देता है ।।४०।।

आमोदयन्ति हृदयं परितः परागाः
पीयूषवर्षिकिरणैः रसयन्ति चन्द्राः ।
देव ! त्वदीयपदपंकजमेति यस्य
स्वान्ते तु तस्य मधुराश्च दिशो भवन्ति ॥४१॥

हे गुरुदेव ! आपका चरण-कमल जिसके हृदय में (क्षणमात्र के लिए भी) प्रकट अर्थात् विकसित हो जाता है, उसका हृदय चरण-धूलि की सुगन्धि से भर जाता है। अमृत की वर्षा करने वाले आपके चरण-नख रूपी चन्द्रमा उसके हृदय को आप्लावित करने लगते हैं तथा उसके लिए सभी दिशायें माधुर्यमय अर्थात् कल्याण करने वाली बन जाती हैं ।।४१।।

जानाति सौख्यं पदपंकजस्य
चेतो मदीयं न भवानपीशः ।
मुक्त्वा द्विरेफं मकरन्दसौख्यं
न वेत्तुमीष्टे कमलाकरोऽपि ।।४२।।

आपके चरण-कमलों के रसास्वादनात्मक सुख को मेरा हृदय ही अनुभव करता है। ईश्वर होते हुए भी आप उसका अनुभव नहीं कर पाते, क्योंकि कमल के मधु के आस्वादन-सुख को भ्रमर छोड़कर स्वयं कमलों का समुदाय भी नहीं समझ सकता ।।४२।।

अनन्तजन्मार्जितपुण्यराशेः
फलंत्वदीयस्मृतिगोचरत्वम् ।
लब्धस्य मे देव ! सदैव चेतो
विलोकितुं वांछति तेऽङ्घ्रिपद्मम् ।।४३।।

अनन्त जन्मों में किए हुए पुण्यों का फल तो आपके स्वरूप की स्मृति का पात्र बनना है, उस स्मृति का लाभ प्राप्त करके मेरा मन आपके चरण-कमल का दर्शन सदा ही करना चाहता है ।।४३।।

देव ! त्वदीयकरुणावरुणालयस्य
कल्लोलशीकरसुसेचनशांततृष्णः ।
नीतस्त्वया धृतकरोऽन्ध इवाहमीश !
संकल्पपंकरहिते सुपथि प्रयामि ।।४४।।

हे देव ! आपके करुणा-समुद्र की हिलोरों से उत्पन्न छींटों के सिञ्चन से मेरी सभी तृष्णा शान्त हो गई है। अतः हे मेरे स्वामी ! ऐसा मैं दूसरे

व्यक्ति के द्वारा हाथ से पकड़े हुए अन्धे की भान्ति आपके अनुग्रह से संकल्प रूपी कीचड़ से रहित सुन्दर मार्ग अर्थात् निर्विकल्प-पथ पर आगे आगे जा रहा हूँ ॥ ४४ ॥

क्रियां च कालं करणं कलां च
योऽपेक्षते कृत्यविधौ न किंचित् ।
कुर्वन्न चाप्नोति च कर्तृभावं
नुमो गुरुं तं करुणैकमूर्तिम् ॥४५॥

जो गुरुदेव किसी भी काम के संपादन करने में क्रिया, काल, करण और कला आदि की अपेक्षा नहीं करते हैं और क्रिया को करते हुए भी कर्तापन के अभिमान का विषय नहीं बनते हैं। उन्हीं केवल करुणा के ही स्वरूप वाले श्रीगुरु को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥

ब्रह्मामृतास्वादशिवस्वभावः
स्वीयस्वभावो भवति प्रसह्य ।
पूतस्य ते देव ! कृपाकटाक्षै-
र्भवोऽपि स्वोद्भूततया विभाति ॥४६॥

हे देव ! आपके कृपा-कटाक्ष से पवित्र बने हुए भक्त को, ब्रह्मामृत का आस्वादन करना जो शिव का स्वभाव है, वह हठात् उसका अपना ही स्वभाव बन जाता है। इतना ही नहीं, यह विशाल संसार भी उन्हें अपने से ही प्रकट तथा अपने में ही ठहरा हुआ दिखाई देता है ॥ ४६ ॥

हन्त्री विधात्री जगतोऽपि कर्त्री
कृपैव ते नैव जनस्य बुद्धिः ।
सर्वार्त्तिहन्त्री भवदङ्घ्रिभक्तिः
सापि प्रभो ! त्वत्कृपया भवित्री ॥४७॥

हे प्रभु ! आपकी कृपा ही जगत की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करने में समर्थ है। लोगों की बुद्धि इस (दुर्घट) कार्य को निष्पन्न करने में असमर्थ ही है। आपके चरणों की भक्ति तो सब दुःखों को नष्ट करने वाली है, किन्तु वह भी दास-जनों में आपकी कृपा से ही उत्पन्न होती है ॥ ४७ ॥

नित्यापरोक्षं तव देव रूपं
प्रकाशमानं परितः पुरस्तात् ।
सर्वादि चाद्यन्तविहीनमेवं
पश्यामि देव ! कृपया तवैव ॥४८॥

हे देव ! आपका नित्य-प्रत्यक्ष-स्वरूप सब ओर से प्रकाशमान ही है। वह स्वरूप सबों का आद्य है एवं स्वयं आदि और अन्त से रहित है। ऐसे आपके स्वरूप को मैं आपकी कृपा से ही देखता हूं ।। ४८ ।।

स्वाराज्यसाम्राज्यपदप्रदायिने
नित्याय शांताय परापरात्मने ।
कारुण्यपूरामृतवर्षिदृष्टये
श्रीदेशिकायामिततेजसे नमः ॥४९॥

जो गुरुदेव स्वात्मराज्य रूपी चक्रवर्ती पदवी को देते हैं, जो नित्य शान्त तथा पर (सूक्ष्म) और अपर (स्थूल) रूप वाले हैं और जिनकी दृष्टि करुणा रूपी अमृत की वर्षा करती है, ऐसे अपरिमित तेज वाले श्रीगुरुदेव को प्रणाम हो ।। ४९ ।।

स्तोतुं त्वां कः समर्थोऽस्ति प्राणबुद्धिप्रवर्तकम् ।
किन्तु प्रभोः प्रसादार्थं ममैतद्वाग्विजृम्भणम् ॥५०॥

प्राण तथा बुद्धि को उत्पन्न करने वाले आपके स्वरूप की स्तुति भला कौन कर सकता है ? ऐसी दशा में भी मेरी यह वाणी आपको प्रसन्न करने के लिए स्वयं उछल पडी है ।। ५० ।।

किं न दत्तं त्वया मह्यं दर्शितं किं न मां पुनः ।
तव स्तुतिपरैवेयं वाणी मे भवतात्प्रभो ! ॥५१॥

हे प्रभो ! आपने मुझे क्या नहीं दिया और क्या नहीं दिखाया ? अतः (इस भांति आपके द्वारा-अनुगृहीत बनी हुई) मेरी यह वाणी केवलमात्र आपकी स्तुति करने में ही लगी रहे (यही प्रार्थना है) ।। ५१ ।।

कुत्र नासि कदा नासि भाति किं वा त्वया विना ।
स्थितं देवं नमस्यामि सेयमर्चा परा मम ॥५२॥

हे गुरुदेव ! आप कहां नहीं हैं ? कब नहीं हैं ? आपके विना प्रकाशित ही क्या होता है ? अतः सर्वथा उपलब्ध अर्थात् प्राप्त आप देव की मैं वन्दना करता हूं—यही वन्दना मेरी परा पूजा अर्थात् अभेदमयी पूजा है ॥ ५२ ॥

न यत्र वाणी न मनोऽपि यस्मिन्
गुरौ कथञ्चित्क्रमते विशुद्धे ।
कथं स्तुतिस्तस्य भवेत्परं स
भक्तार्थमद्यास्ति गृहीतरूपः ॥५३॥

जिस विशुद्ध अमायीय गुरुरूप में किसी प्रकार की तथा किसी भी रूप से की गई स्तुति-रूप वाणी पहुँच नहीं पाती है तथा जहां चञ्चल मन की गति भी स्थिर हो जाती है। ऐसा होने पर उसकी स्तुति कैसे की जा सकती ? परन्तु उस ऐसी (परशिव-रूप) गुरु-शक्ति ने, भक्तों के हितकार के लिए, आज शरीर धारण किया है ॥ ५३ ॥

येन मानमितिमेयभानतः
संनिवर्त्त्य निजवैभवे शिवे ।
स्थापितोऽस्मि कृपयावलोकित-
स्तं नतोऽस्मि गुरुमेव लक्ष्मणम् ॥५४॥

जिस गुरु-देव ने अपनी कृपा-पूर्ण दृष्टि से मुझे प्रमेय, प्रमाण और प्रमित के (झंझट-पूर्ण) अनुभव से एकदम लौटाकर अपने शिव-रूप वैभव में ठहराया है, उन श्रीमान् गुरुदेव लक्ष्मण जी को ही मैं नमस्कार करता हूं। ५४।

सद्यः प्रपन्नजनताहृदयाम्बुजन्म
संबोधयत्यखिलविश्वमयच्छदैर्यत् ।
तद्देशिकाङ्घ्रिजमहो मिहिरायमाणं
शश्वच्चकास्तु सबलाकृति शाश्वतं नः ॥५५॥

सूर्य के समान आचरण करता हुआ अर्थात् प्रकाश और विकास करने

वाला, गुरु-देव के चरण-कमलों से उत्पन्न जो तेज, शरण में आये हुए जन-समूह के हृदयों को अखिल विश्वमय पत्रों के रूप में विकसित करता है, वह शाश्वत-तेज पूर्णरूप से हम सभी भक्तों के हृदयों में सदा चमकता रहे ।५५।

हृदम्बुजदिनेशाय मोहरण्यदवाग्नये ।
शान्तिरात्रिमृगाङ्काय चिद्रूपगुरवे नमः ॥५६॥

जो स्वात्म रूपी गुरुदेव भक्तों के हृदय रूपी कमल को विकसित करने में सूर्य के समान हैं, मोह रूपी भयंकर जंगल को नष्ट करने के लिए दावाग्नि अर्थात् जंगल की आग के समान हैं और भक्तों में विद्यमान भेद-प्रथा रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए शान्ति-रात्रि के पूर्ण चन्द्र के तुल्य ही हैं, ऐसे चिद्रूप गुरुदेव को नमस्कार हो ।।५६।।

उपायवनचैत्राय शिवाय शिवयोगिनाम् ।
भविनां भुक्तिमुक्त्यर्थं कल्पवृक्षाय ते नमः ॥५७॥

उपाय रूपी जगल के लिए जो गुरुदेव चैत्र-मास के समान हैं अर्थात् जैसे चेत महीने के आने पर सभी वन पुष्पित और फलों से युक्त हो जाते हैं, उसी भांति गुरु के संबन्ध से ही सभी उपाय सफल बनते हैं। जो गुरुदेव शैव-योगियों के लिये कल्याण-रूप शिव-स्वरूप हैं तथा संसारी जनों को भोग और मोक्ष देने के लिए कल्पवृक्ष के समान मनमांगा फल देते हैं, ऐसे श्रीगुरु को मेरा नमस्कार हो ।।५७।।

स्वात्मविश्रांतिदं यस्य दर्शनं भवतापहम् ।
नमस्तस्मै स्वतन्त्राय पारतन्त्र्यविनाशिने ।।५८।।

जिन गुरुदेव का दर्शन-मात्र संसार के सभी दुखों को दूर करने वाला स्वात्म-विश्रांति को देने वाला तथा स्वयं स्वातंत्र्य-पूर्ण होकर परतन्त्रता को नष्ट करता है, ऐसे श्रीगुरुदेव को मेरा नमस्कार हो ।।५८।।

आद्यन्तहीनोऽस्ति विभोर्हि यस्य
भातं समस्तं भवमश्नुवानः ।
संकोचशून्यप्रसरत्प्रकाशः
स मे गुरुः केन कथं स्तुतः स्यात् ।।५९।।

जिन व्यापक गुरुदेव का प्रकाश संकोच की मलिनता से रहित होकर केवलमात्र प्रकाश का स्वरूप बना है, जो आदि और अन्त से रहित है और जो संपूर्ण संसार को अपने में विलीन कर रहा है, भला ऐसे मेरे तेजस्वी गुरुदेव की स्तुति कैसे और किन साधनों से की जा सकती है ? ।।५९।।

वाचा निर्मलया सुधामधुरया दृष्ट्या च शिष्यान्निजा-
नुद्धर्तुं नरविग्रहीव रमते यः स्वात्मसंस्थः शिवः ।
तं वन्दे परमप्रकाशनिबिडं स्वेच्छास्फुरद्विग्रहं
कारुण्याम्बुनिधिं महागुरुवरं श्रीलक्ष्मणं सर्वदम् ।।६०।।

जो स्वरूपनिष्ठ शिव मानवशरीर धारण करके अमृत के समान मधुर वाणी और निर्मल प्रकाशरूप दृष्टि से अपने शिष्यों का उद्धार करने की क्रीड़ा करते रहते हैं, उन महान् तेज के भंडार, निजी स्वतन्त्र इच्छा शक्ति से देह धारण करने वाले, करुणा के सागर तथा सभी मनोवांछित फल को देने वाले श्रीमान महागुरुवर श्रीलक्ष्मण जी की मैं वन्दना करता हूं ।।६०।।

शश्वच्छांतिसमावृतोऽपि विषयैरेभिर्निजोद्भासितै-
र्हासोल्लासविलासकौतुकपरः स्वस्मिन्समन्तात्स्थितः ।
यश्चैतन्यसुधानिधिर्विजयते देवः स एको गुरु-
र्विद्वन्मानसपुष्करप्रविततज्ञानप्रभो लक्ष्मणः ।।६१।।

जो गुरुवर, सनातन शांति से परिपूर्ण होने पर भी अर्थात् अनाख्य-दशा में ठहरे हुए भी, अपने द्वारा ही प्रकाशित इन बाह्य विषयों में भी उन्मेष और निमेष की क्रीडा का रसास्वादन करते रहते हैं जो सर्वतः अपने स्वरूप में ही विराजमान हैं तथा जिन गुरुदेव की ज्ञान-प्रभा विद्वानों के हृदय रूपी आकाश में फैली हुई है उन चैतन्य-सुधा-सागर श्रीलक्ष्मण जी की जय हो ।।६१।।

पूज्यः श्रीगुरुराजलक्ष्मणशिवः काश्मीरदेशस्थितो
भातु ध्वान्तनिवारको भुवि नृणां चित्ते स शान्तिप्रदः ।
आसीदस्ति भवत्यपि प्रतिदिनं यो लीलया सन्ततं
स्वच्छः स्वाद्भुतशक्तिचक्रविभवस्त्रैलोक्यमेतज्जगत् ।।६२।।

जो परम-पूज्य, निर्मल, मानसिक शांति देने वाले, अपने अद्‌भुत शक्ति-चक्रों के ऐश्वर्य वाले, अपनी ही लीला से सदा भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल में इस समस्त त्रिलोकी का स्वरूप बनते रहते हैं, वे काश्मीर देश में ठहरे हुए गुरुराज श्रीलक्ष्मण जी संसार-भर के मनुष्यों के अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करते हुए सदा प्रकाशित बने रहें ।।६२।।

वाणी यस्य सुनिर्मलातिसरसा तापत्रयोज्जासने
यद्‌दृष्टिं करुणाभरां नतजनोद्धारे परिस्पर्धते ।
यत्रैकापि नतिर्ददाति सकलं साम्राज्यमत्यद्भुतं
तत्रैवास्तु महेश्वरे मम गुरौ श्रीलक्ष्मणे मे रतिः ॥६३॥

(आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक) तीनों सन्तापों को दूर करने तथा शरण में आये हुए भक्त-जनों का उद्धार करने में, जिन गुरु महाराज की सुनिर्मल एवं सरस वाणी, करुणा-पूर्ण दृष्टि के साथ स्पर्धा (होड) करती है और जिनके प्रति किया गया प्रणाम-मात्र ही अत्यद्‌भुत साम्राज्य प्रदान करता है; उन्हीं मेरे महेश्वर-रूप सद्‌गुरु श्रीलक्ष्मण जी में मुझे सदा प्रेम बढता रहे ।।६३।।

श्रीगुरुपदनखजन्मा
जन्मान्धस्यापि प्रकाशयन्नर्थान् ।
स जयति कोऽपि विकासः
प्रकाशमानोऽनवच्छिन्नः ॥६४॥

उस अनुग्रहात्मक किसी अवर्णनीय विकास की जय हो जो श्रीगुरुदेव के चरणों के नख चन्द्रों से उत्पन्न हुआ है, जो जन्म से अन्धे (अज्ञानी) को भी ज्ञान से संयुक्त बनाकर सभी पदार्थों को शिव-रूप ही दिखाता है और जो अनवच्छिन्न रूप से स्वयं प्रकाशमान है ।।६४।।

विनाशिताशेषविकल्पबुद्ध्य-
हंरूपमन्त्रार्थविकासिकाभ्याम् ।
देहाद्यहंकारनिवर्तिकाभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।।६५॥

जिस ने सभी विकल्प-रूप बुद्धियों को नष्ट किया है, जिस ने पूर्णाहन्ता रूपी मन्त्र-वीर्य के सार बने हुए तत्त्व का विकास किया है और जिस ने देह आदि (प्राण, पुर्यष्टक तथा शून्य के) अहंकार को समाप्त किया है, श्रीगुरुदेव के ऐसे उस पादुका-युगल को बारम्बार नमस्कार हो ।।६५।।

उद्घाटिताद्वैतमहेक्षणाभ्यां
निमीलितद्वैतविलोचनाभ्याम् ।
मोहान्धकारेऽपि विरोचनाभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥६६॥

जिसने शिष्यों के अद्वैत रूपी विशाल नेत्रों को खोला है, जिसने भेद-प्रथा रूपी नेत्रों को एकबारगी बन्द कर दिया है और जो मोह रूपी घने अन्धेरे में भी सूर्य के समान दीप्तिमान है—सद्गुरु के ऐसे पादुका-युगल को बार बार नमस्कार हो ।।६६।।

उद्धीर्णरागप्रतिरोधिकाभ्यां
विलीनबोधप्रतिबोधिकाभ्याम् ।
अनादिमायामलवारिकाभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।।६७।।

जो बढे हुए राग आदि दोषों को रोकता है, सुप्तप्राय ज्ञान को जो फिर से जगाता है तथा जो अनादि काल की माया से उत्पन्न (तीन आणव, मायीय और कार्म) मलों को हटाता है, गुरुदेव के ऐसे पादुका-युगल को बार बार नमस्कार हो ॥६७॥

अम्बादिरौद्र्यन्तमरीचिकाभ्यां
वर्णादिसर्वाध्वविवर्त्तिकाभ्याम ।
इच्छादिदेवीततचन्द्रिकाभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥६८॥

अम्बा, जेष्ठा, वामा और रौद्री शक्तियां जिनकी किरणें बनी हुई हैं, जो 'वर्ण, मन्त्र, पद, कला, तत्त्व और भुवन'—इन षडध्वाओं को उत्पन्न करती है तथा 'इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया'—इन शक्तियों के द्वारा जिनकी ज्योत्स्ना फैली है, श्रीगुरुदेव की ऐसी पादुका को बारम्बार नमस्कार हो ।६८।

संसारदावानलघोरताप-
शान्त्यर्थपीयूषमहाह्रदाभ्याम् ।
आप्यायितस्मर्तृजनव्रजाभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥६९॥

संसार रूपी दावानल (जंगल की आग) से उत्पन्न भयंकर त्रिविध सन्तापों को शांत करने के लिए जो अमृत-पूर्ण अगाध जलाशय बनी हुई है तथा स्मरण करने वाले जन-समूह को जिन्होंने आप्यायन किया है—श्रीगुरु-देव की ऐसी पादुका को बार बार नमस्कार हो ॥६९॥

समस्तविद्योदधिसारदाभ्यां
श्रीशारिकास्वान्तसुसेविताभ्याम् ।
सच्छिष्यवृन्दैः परिपूजिताभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥७०॥

संपूर्ण विद्या समुद्र के सारभूत तत्त्व को देने वाले, शारिका देवी जी के मन से सेवित तथा सत्-शिष्य-समूह से समर्चित श्रीगुरु-देव की पादुका को बार बार नमस्कार हो । ७०॥

प्रभाप्रकाशार्थधृतव्रताभ्यां
तिरस्कृतानादिमनस्तमोभ्याम् ।
मुक्तिप्रदाभ्यां विभवप्रदाभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥७१॥

जिस पादुका ने स्वात्म-संवित्ति को प्रकाशित करने का ही व्रत धारण किया है—तथा अनादि-काल से चले आने वाले मानसिक अज्ञान को दूर किया है, मुक्ति तथा ऐश्वर्य को देने वाली ऐसी श्रीपादुका को बार बार नमस्कार हो ॥७१॥

दौर्भाग्यदावाग्निशिवाम्बुदाभ्यां
दूरीकृताशेषविपत्ततिभ्याम् ।
कृपाकृतार्थीकृतमादृशाभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥७२॥

दुर्भाग्य रूपी जंगल की आग को शान्त करने के लिए कल्याणमय मेघ के समान, सभी विपदाओं की परम्परा को दूर करने वाले तथा मेरे जैसे सद्भक्तों को भी कृतार्थ अर्थात् पारमार्थिक मोक्ष देने वाले गुरु-राज के पादुका-युगल को बार बार नमस्कार हो ॥७२॥

इमानि पद्यपुष्पाणि सदाह्लादकराण्यतः ।
लभन्तां स्वीयसाफल्यं गुरुपूजामहोत्सवे ॥७३॥

सदा आनन्द को देने वाले ये श्लोक रूपी पुष्प गुरु-पूजा के महोत्सव पर अपनी सफलता प्राप्त करें ॥७३॥

गुरुस्तुतिफलं वक्तुं शक्तः शेषोऽपि नो परम् ।
स्वदन्ते स्तुतिकर्तारः फलं सद्यः परामृतम् ॥७४॥

सहस्र-मुख वाले शेषनाग भी श्रीगुरुदेव की स्तुति का फल वर्णन करने में असमर्थ हैं। हम तो केवल इतना ही कहेंगे कि गुरु-स्तुति करने वाले तत्क्षण ही परमामृत रूपी फल का आस्वादन करने लगते हैं। (अतः इस से बढ़कर और क्या फल हो सकता है? ॥७४॥

रामेश्वरेण विदुषा
भक्तिप्रेरितचेतसा ।
श्रीगुरोर्लक्ष्मणस्यैषा
रचिता पादुकास्तुतिः ॥७५॥

गुरु-राज की भक्ति से प्रेरित चित्त वाले विद्वान आचार्य रामेश्वर जी ने श्रीसद्गुरु लक्ष्मण जी की इस पादुका-स्तुति की रचना की है ॥७५॥

इति मिथिलादेशस्थ-
श्रीरामेश्वराचार्यवर्य्यस्य
कृतिरियम् ॥

22

श्रीगुरुचरणेभ्यो नमः

शक्तिर्यस्य परैः प्रकृत्यनुगतैः प्रोक्ता प्रकृत्याख्यया
बोधाद्भीतमुपागतैरिव पुनश्चान्यैरविद्याख्यया ।
स्पन्दात्मा जगदम्बिका शिवमयी सूक्ताबुधैर्देशिकैः
सोऽयं मे गुरुदेवलक्ष्मण शिवः पायाच्च शिष्यान्सदा ॥

स्मृतोऽपिमनसा मनाक् करुणया जनानुद्धरन्
ददच्च शिवतापदं सहजमोक्षसम्पद्युतम् ।
जनेभ्य इह सर्वदो निखिलदुःखदोषापहा
मदीय हृदि सर्वदा वसतु शंकरो लक्ष्मणः ॥

श्रीमद्गुरोर्विजयते करुणामयीदृक्
निःशेषभूतिजनिका जगतीश्वरस्य ।
लब्धा तनोति सततं सकलां विभूतिं
या दुर्लभास्ति भुवने खलु दुर्भगानाम् ॥

मनुष्यता वा बहुविज्ञता वा
यशस्विता वा विफलत्वमेति ।
यया विना तां लभतेऽतिभाग्याद्
गुरोः सपर्यां भवभीतिहन्त्रीम् ॥

देवीऽद्वयोयोऽस्ति महेश्वरोऽसौ
श्री लक्ष्मणाख्यो भवभीतिहन्ता ।
मोहापहन्त्रे विभुता प्रदात्रे
सम्पद्विधात्रे च नमो नमोऽस्मै ॥

भवेऽत्र भवतापहा सकलभोगदानेन यो-
जने पशुपतित्वकृद् भवति बोधदानेन यः ।
तमेककरुणाकरं सकलसिद्धिसम्पादकम्
भजामि गुरुलक्ष्मणं भुवनभान निर्वापकम् ॥

ॐ

कौलेत्युपाह्वश्रीजियाललरचिता

श्रीपादुकास्तुतिः

★

प्रभादेवीरचितभाषानुवादसहिता ।

ॐ

कौलेत्युपाह्वश्रीजियाललरचिता

गुरुपरिचयात्मिका श्रीपादुकास्तुतिः

गौरीपतिं जगन्नाथं सर्वसंकटनाशिनम् ।
स्वभक्त्यामृतदातारं मुनीनां हितकारिणम् ॥१॥

समावेशरसास्वादपरमाह्लादचेतसाम् ।
योगिनां हृदये नित्यं भासमानं चिदात्मकम् ॥२॥

गुरूणामपि सर्वेषां गुरुं चैकं जगद्गुरुम् ।
नमाम्यहं महादेवं विश्वकल्याणकारिणम् ॥३॥

(तिलकम्)

पार्वतीनाथ जगदीश्वर, समस्त दुःखों के नाशक, अपनी भक्ति से मोक्ष देने वाले, ऋषि-मुनि-जनों के हितकारी, शिव-समावेश-रस का आस्वाद करने से जिन योगियों का हृदय परमानन्द-मय बना हुआ होता है ऐसे योगी-जनों के हृदय में प्रकाशित चिदात्मा प्रभु, एवं समस्त गुरुओं के भी एक गुरु विश्वकल्याणकारी महादेव को मैं प्रणाम करता हूं ॥१, २, ३॥

जयन्ति गुरुदेवानां पादपंकजपांसवः ।
यत्संस्पर्शात्तरन्त्येते जनाः संसारसागरम् ॥४॥

श्रीगुरुदेव के चरण-कमलों की धूलि की जय हो अर्थात् वह चरण-कमलों की धूलि परम-उत्कर्षशालिनी है, जिसके स्पर्श-मात्र से ही सांसारिक-जन संसार-सागर से पार हो जाते हैं ॥४॥

यज्जन्मपूतां जगतीं विलोक्य
स्वसृष्टिसाफल्यमबोधि धाता ।
नमाम्यहं तं गुरुमीश्वराख्यं
शिष्यान्समस्ताञ्छिवयन्तमेकम् ॥५॥

जिसका जन्म लेने से समस्त त्रिलोकी को पवित्रीभूत देखकर ब्रह्मा जी अपनी जगत्सृष्टि की सफलता समझने लगा, उस अद्वितीय समस्त शिष्यों का कल्याण करने वाले ईश्वर-स्वरूप नाम वाले गुरु-देव को मैं नमस्कार करता हूं ॥५॥

अरण्यमालिन्युदरात्प्रसूतो
नारायणाख्यात् पुरुषोत्तमाच्च ।
स्वरूपभूतोऽस्ति य ईश्वरस्य
नाम्ना क्रियाभिस्तमहं नमामि ॥६॥

पुरुषों में श्रेष्ठ नारायण* जी से जो अरण्यमाली† के गर्भ से उत्पन्न हुआ श्रीलक्ष्मण जी है तथा जो नाम तथा क्रिया से ईश्वर-स्वरूप बना हुआ है, उसे मैं प्रणाम करता हूं ॥६॥

संश्रूय यस्याद्भुतजन्मवार्तां
श्रीरामदेवोऽपि गुरुर्गरीयान् ।
श्रीवासुदेवस्तुतिपद्यमुच्चै-
र्गायन् ननर्तासमहाप्रमोदः ॥७॥

जिसकी अद्भुत जन्म-वार्ता सुनकर सर्वश्रेष्ठ सद्गुरु श्रीरामजी भी; भगवान् कृष्ण जी के उत्पन्न होने के समय गाये गये पद्य‡, उच्च स्वर में गाते हुए आनन्द से विभोर होकर नाचने लगे ॥७॥

---

* हमारे गुरुदेव के पिता का नाम श्रीनारायण जी था ।

† अरण्यमाली—हमारे गुरुदेव की माता का नाम था ।

‡ भगवान् कृष्ण जी के जन्म पर गाये गये पद्य ये हैं—

"घटि मंज़ु गाश आव् च्यान्ने ज़्यनयि ।
जय जय जय जय देवकीनन्दनयि ॥"

अदृष्टपूर्वां परिदृश्य तस्य
दशां गुरोर्विस्मयमावहन्ती ।
संवाददात्री भगिनी शिशोः सा
जगाद नामास्य विनिर्दिश त्वम् ॥८॥

इस बालक की जन्मवार्ता सुनाने वाली भगिनी सद्गुरु श्रीराम जी को अदृष्टपूर्वा (पहिले कभी न देखी हुई) एवं आश्चर्य-जनक दशा देखकर श्रीराम जी से कहने लगी कि हे गुरुदेव ! इस बालक का क्या नाम होगा ? यह कहिए ।८।

न नाम जातस्य मया तु कार्यं
कृतास्य संज्ञा विधिनैव पूर्वम् ।
रामोऽस्म्यहं लक्ष्मण एष नूनं
समागतः साम्प्रतमित्युवाच ॥९॥

तब श्रीराम जी ने उसे उत्तर देते हुए कहा—इस नवजात बालक का नाम भला मैं क्या रखूंगा ? विधाता ने तो इसका नाम पहिले ही रखा है। जब मैं राम हूं तो यह अवश्य लक्ष्मण ही पुनः जन्मे हैं ॥९॥

यथार्थवाणीमवदन्महात्मा
भवो भवस्याभ्युदयाय भूतः ।
तपस्विना तेन तु पूर्वमेत-
च्छिवात्मनाज्ञायि जनैस्तु पश्चात् ॥१०॥

सत्य वाणी को कहते हुए महात्मा श्रीराम जी ने उस संवाददात्री भगिनी से कहा कि यह तो भगवान् शंकर ही जगत का कल्याण करने के लिए प्रकट हुए हैं। इस बात को उन शिव-स्वरूप तपस्वी श्रीराम जी ने पहिले ही अर्थात् बालक के जन्म लेने पर ही जान लिया था, शेष सभी लोग तो इस बात से बाद में परिचित हुए ॥१०॥

सत्या कथैषा नतु कल्पनैषा
जानाति सर्वोऽपि यतस्तथैनाम् ।
अतस्त्वहं लक्ष्मणनामधेयं
नमामि देवं गुरुमद्वितीयम् ॥११॥

(नवजात बालक की) यह संपूर्ण वार्ता सौलह आने सत्य है, कल्पना नहीं है। क्योंकि सारी जनता भी इस बात को उसी रूप में जानती ही है। अतः मैं लक्ष्मण जी नाम वाले अनुपम गुरुदेव को नमस्कार करता हूं ॥११॥

पदार्पणानुग्रहपूतमस्य
कुलं हि सर्वोच्चतया चकास्ति ।
कृत्यैश्च तैस्तैः पुनराबभासे
नमाम्यहं तं गुरुराजमेकम् ॥१२॥

मैं उन अलौकिक गुरुराज को नमस्कार करता हूं जिनके पदार्पण रूपी अनुग्रह से पवित्र बना हुआ इनका कुल सब भांति चमकने लगा अर्थात् प्रशंसित हुआ तथा इनके उन अनेक (अद्भुत) कृत्यों से यह कुल पुनः प्रकाशित होने लगा ॥१२॥

आशैशवाद्यो लभते समाधिं
योगीन्द्रनाथः स महाप्रभावः ।
एतद्धि श्रुत्वा चकिता जनाः स्यु-
र्हृष्टाः पुनस्ते विदितप्रभावाः ॥१३॥

महाप्रभावशाली योगीराज हमारे गुरुदेव बाल्य-काल से ही समाधि को प्राप्त करते थे—इस किंवदन्ती को सुनकर सभी लोग आश्चर्य-चकित होते थे, परन्तु पीछे वही लोग प्रत्यक्ष रूप में उस प्रभाव को देखकर अतिहर्षित हो जाते थे ॥१३॥

समाधिलग्नं विषयैर्विमुक्तं
मनोऽस्य भोगेषु नियोजयन्तौ ।
कृतप्रयत्नावनवाप्तकामौ
शिष्यत्वमेवाधिगतौ गुरू स्वौ ॥१४॥

यथा पुरा तत्पितरौ न शेकतुः
सुतस्य बुद्धस्य मनो विचालितुम् ।
महात्मनो धैर्यधनस्य योगिनो
विरागिणस्तत्त्वगवेषणोद्यतम् ॥१५॥ (युगलकम्)

समाधि के सुख का अनुभव करने में तत्पर इस बालक का मन सांसारिक भोगों में लगाने के लिए यद्यपि इसके माता पिता ने अपनी ओर से भरसक प्रयत्न किया, तथापि ऐसा करने में असफल होने पर दोनों गुरु-तुल्य माता पिता बालक के ही शिष्य बन गये। जैसे पूर्वकाल में महात्मा बुद्धदेव के माता पिता, धैर्य धन वाले, योगी, वैराग्य से संपन्न अपने पुत्र के निर्वाण-तत्त्व की खोज में लगे हुए मन को अपने लक्ष्य से हटा न सके ॥१४,१५॥

महताबकाकोऽस्य गुरुर्गरीयान्
परमेष्ठिदेवोऽपि च रामदेवः।
रमणो महर्षिर्दृशि चागतोऽस्य
तमहं गुरुं नौमि गुरुक्रमस्थम् ॥१६॥

इन हमारे श्रीगुरु के गुरुदेव श्री स्वामी महताबकाक जी थे। इनके परम-गुरु श्रीमान् स्वामी रामजी थे। हमारे गुरुमहाराज ने महर्षि रमण-भगवान् के भी दर्शन किए हैं। इस भांति गुरुपरम्परा में अवस्थित श्रीगुरु-महाराज को मैं नमस्कार करता हूं ॥१६॥

कैशोरकाले दृढनिश्चयोऽसौ
क्षेत्रं समासादितवांस्तपोऽर्थम्।
चकार तत्रैव तपो महात्मा
शोकाकुलाभूज्जननी तु तस्मात् ॥१७॥

हमारे महात्मा गुरुदेव किशोर-अवस्था में ही दृढ-निश्चय वाले बन कर तपस्या करने के लिए (साधु-गंगा नामक) पुण्य-तीर्थ की ओर चले गए और वहां तपस्या करने लगे। उनके इस व्यवहार से उनकी माता शोक से व्याकुल हो गई ॥१७॥

अक्कानुरोधाद् गुरुणा निवर्तितः
प्रत्याजगाम स्वगृहं नवं पुरे।
तत्रैव चक्रे वसतिं ह्यनन्तरं
नतोऽस्म्यहं तं तपसि स्थितं गुरुम् ॥१८॥

माता के अनुरोध करने पर श्रीगुरु स्वामी महताबकाक जी ने इ उस तीर्थ से लौटाया। तत्पश्चात् हमारे गुरु-देव (पिता के द्वारा एकान्त शीघ्रतापूर्वक निर्मित) नवीन घर में आ कर एकान्त में रहने लगे। इस भा तपोनिष्ठ श्रीगुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं ।।१८।।

वसन् हि तत्र स्वगृहे महात्मा
शैवागमाभ्यासरतिं चकार ।
मुकुन्दराजानकवर्यसूनु-
र्महेश्वराख्यो हि गुरुर्गरीयान् ।।१९।।

बभूव विद्यागुरुरस्य धीमान्
महात्मनः पुण्यव्रतस्य तत्र ।
सत्पात्रन्यस्तां हि तथा स्वविद्यां
संशोभयामास गुरुः स नूनम् ।।२०।।

(युगलकम्)

महात्मा अपने नवीन घर में रहते हुए, शैव-शास्त्रों के अध्ययन में निरत हो गए। हमारे पुण्यात्मा श्रीगुरु-देव के शास्त्र-गुरु श्रीमुकुन्द राजदान के सुपुत्र बुद्धिमान महामना महेश्वर राजदान जी थे। उन गुरुवर्यों ने अपनी विद्या को सत्पात्र शिष्य में रखकर अर्थात् उन्हें विद्वान बनाकर निश्चय रूप से उस (अपनी विद्या) को अति सुशोभित किया ।।२०।।

तस्मात्सुतीर्थाद्विधिवत्तदानीं
शैवागमाचार्यकृतानि तानि ।
सर्वाणि शास्त्राणि परिश्रमेण
पपाठ शीघ्रं गुरुरस्मदीयः ।।२१।।

हमारे गुरुदेव ने उन तीर्थ-स्वरूप सभी शास्त्रों के वेत्ता गुरुदेव से विधि-पूर्वक शैवागम के आचार्यों के द्वारा रचित समस्त शैव-शास्त्रों को अति परिश्रम से तथा अल्पकाल में ही पढ़ा ।।२१।।

तथाविधं तं गुरुमद्वितीयं
तथैव शिष्यं स्पृहणीयबुद्धिम् ।
मेने स्वसौभाग्यमिव समीक्ष्य
परां च शोभां समवाप विद्या ॥२२॥

इस प्रकार वैसे अद्वितीय प्रकाण्ड विद्वान गुरु को तथा उसी भांति सराहनीय बुद्धि वाले शिष्य को देखकर, ऐसा अनुमान किया जाता है कि मानो सरस्वती देवी अपने (भावी उदय रूप) सौभाग्य को देखकर परम-शोभा को प्राप्त हुई ॥२२॥

सच्छास्त्रविद्यासमलंकृतोऽसौ
बभौ यथा खे रविचन्द्रतारकाः ।
प्रकाण्डपाण्डित्यविभूषणाभं
नमाम्यहं तं विदुषां शिरोमणिम् ॥२३॥

यह हमारे गुरुवर सत्-शास्त्र अर्थात् शैव-शास्त्र की विद्या के अध्ययन से अलंकृत होकर उसी प्रकार शोभायमान बने, जैसे आकाश में सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्र-गण सुशोभित होते हैं। उन्हीं प्रकाण्ड-विद्या के अलंकार बने हुए, एवं विद्वानों के अमूल्य शिरोरत्न गुरुराज को मैं नमस्कार करता हूं ॥२३॥

व्यतीत्य कंचित्समयं तु तत्र
ततो जगामेश्वरपर्वतं हि ।
चकार तत्रैव गृहं सुरम्य-
मुद्यानमध्ये जलपुष्परम्ये ॥२४॥

हमारे गुरुदेव वहां कुछ समय रह कर ईश्वर-पर्वत (प्राचीन ईशब्रारू वर्तमान ईशबर) पर चले गये और उन्होंने उसी पर्वतीय-स्थान में जल और फूलों से रमणीय उपवन में सुन्दर भवन का निर्माण किया ॥२४॥

तदाश्रमस्थानमभूत्प्रसिद्धं
नाम्ना तथार्थक्रियया हि रूढम् ।
भूस्वर्गमध्ये परमेशधाम
तत्र स्थितं नौमि गुरुं परेशम् ॥२५॥

वह हमारे गुरुदेव का आश्रम 'ईश्वर-आश्रम' नाम से तथा उसके अनुरूप क्रिया अर्थात ईश्वर सम्बन्धी चर्चा से प्रसिद्ध हुआ। (ऐसा प्रतीत होता है कि) स्वर्ग-तुल्य पृथ्वी पर मानो यह आश्रम परमेश्वर का ही धाम है। उसी में रहने वाले परमेश्वर-स्वरूप गुरु महाराज को मैं प्रणाम करता हूं।२५।

श्रियः पुरादेव बहिः समीपे
ह्यस्याश्रमोऽसौ खलु सर्ववन्द्यः।
जनाश्च यत्रात्मसुखं लभन्ते
नमाम्यहं तं गुरुमद्वितीयम् ॥२६॥

मैं अपने अनुपम सद्गुरु को प्रणाम करता हूं जिनका आश्रम सभी लोगों से पूजित तथा श्रीनगर के समीप (होते हुए भी कोलाहल से दूर) है, जहां जाकर सभी भक्त-जन आत्म-सुख को प्राप्त करते हैं ॥२६॥

व्यतीतबाल्यो हि गुरुस्तदानीं
लब्धप्रतिष्ठश्च तपस्विवर्यैः।
तदाश्रमस्थः शुशुभे यथाहि
कैलासपीठोपरि चन्द्रमौलिः ॥२७॥

बाल्य-काल के बीत जाने पर हमारे गुरुदेव ने श्रेष्ठ तपस्वी योगी-जनों से आदर प्राप्त किया। इस आश्रम में रह कर ये वैसे ही शोभायमान हुए जैसे कैलास-पर्वत के शिखर पर चन्द्र-कला-धारी भगवान शंकर शोभित होते हैं ॥२७॥

पोलैण्डफ्रांसादिफिरंगदेशा-
गतस्य लोकस्य सुखेच्छुकस्य।
सुखं समन्तात्कृपया वितन्वते
नमो मदीयगुरवेऽतितेजसे ॥२८॥

पोलैंड फ़्रांस आदि पाश्चात्य-देशों से आये हुए सुख की इच्छा रखने वाले जनों में जो अपनी कृपा से पूर्णरूपतया स्वात्म-सुख का प्रसार करते रहते हैं, ऐसे अति तेजस्वी मेरे गुरुदेव को नमस्कार हो ॥२८॥

तदाश्रमस्थानमतीवसुन्दरं
दिव्यैश्च तैस्तैः सुखसाधनैर्युतम् ।
मन्दारतुल्यैस्तरुभिः सुशोभितं
मन्ये हि तन्नन्दनमेव भूगतम् ॥२९॥

वह आश्रम का स्थान भिन्न भिन्न प्रकार के अलौकिक सुख-सामग्रियों युक्त बना हुआ बहुत ही सुन्दर देखने में आता है। मैं तो यही कहूंगा क मन्दार-वृक्ष के समान वृक्षों से शोभायमान वह आश्रम मानो इन्द्र-देव का न्दन नामक उद्यान (बगीचा) ही पृथ्वी पर अवतरित हुआ है ।२९॥

रक्षीव पश्चादचलो हि तस्य
पुरो डलाख्यो विमलः सरोवरः ।
भद्रेव कुल्या वहति प्रकर्ष-
वेगातिरम्या मधुरं क्वणन्ती ॥३०॥

उस आश्रम के पिछले भाग में पर्वत सन्तरी की भांति मानो रक्षा रता है। इसके अगले भाग में 'डल' नामक निर्मल विशाल सरोवर अवस्थित । मंगलमयी छोटी सी रमणीक नदी पास में ही अति तीव्रता से मधुर ल-कल-शब्द करती हुई बहती है ।।३०॥

यदाश्रमे मे प्रतिभाति नून-
मुग्रस्वभावं परिहृत्य स्वीयम् ।
माधुर्यभावं परिगृह्य नित्यं
शान्तानुकूला रचिताञ्जलिश्च ॥३१॥

भद्रावहासौ धृतपुष्पहस्ता
सौम्यस्वरूपा विनयावनम्रा
दासीव प्रेम्णा प्रकृतिः स्थितास्ति
तं नौमि देवं प्रकृतीशितारम् ॥३२॥

(युगलकम्)

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जिस (हमारे गुरुदेव के) आश्रम में प्रकृति

भी अपना भयंकर स्वरूप छोडकर मंगलमयी बनकर अपने मधुर-स्वभाव को धारण करती है। सदा शांत और अनुकूल बनकर अञ्जलि बांधकर भद्ररूपता (कल्याण-रूपता) का प्रसार करती है और हाथों में फूलों के गुच्छे जैसे लेकर सुन्दर स्वरूप से युक्त तथा विनय से नम्र बनी हुई दासी की भांति स्नेहपूर्वक ठहरी है—उन्हीं प्रकृति पर शासन करने वाले श्रीगुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं ॥३१,३२॥

तदाश्रमे भास्करवासरे तु
महान् भवत्युत्सव एव सर्वदा।
आयान्ति लोकाः पुरुषाः स्त्रियश्च
शिष्यप्रशिष्याश्च तथान्यभक्ताः ॥३३॥

इस आश्रम में प्रति रविवार के दिन निरन्तर रूप से महान् उत्सव ही होता है। इस दिन सभी लोग, पुरुष, स्त्रियां, शिष्य, प्रशिष्य तथा अन्य भक्त-जन भी आते रहते हैं ॥३३॥

कौतूहलाधिष्ठितमानसा वै
नरस्वरूपास्त्रिदिवौकसश्च।
सच्छास्त्रव्याख्याश्रवणेप्सया ते
पठन्ति शैवागमपुस्तकानि ॥३४॥

तेषां तु व्याख्यां कुरुते महात्मा
भवन्ति श्रुत्वाथ निवृत्तशङ्काः।
गच्छन्ति लाभान्वितचेतसोऽपि
भजे गुरुं संशयनाशकं तम् ॥३५॥

(युगलकम्)

रविवार के दिन सत्यतः ऐसा प्रतीत होता है कि मन में कुतूहल लिए हुए देवता भी मनुष्य का रूप धारण करके सत्-शास्त्रों की व्याख्या को (गुरु-मुख से) सुनने की इच्छा रखते हुए शैव-शास्त्रों की पुस्तकों का अध्ययन करते हैं ॥३४॥

उन शैव-शास्त्रों की व्याख्या हमारे श्रीगुरु महात्मा करते हैं। उस

याख्यान को सुनकर उन श्रोताओं की शङ्कायें दूर हो जाती हैं तथा मनो-
ाञ्छित लाभ से युक्त होकर घर चले जाते हैं। इस भांति संशय-नाशक
ीगुरु की मैं सेवा करता हूं ॥३५॥

प्रधानशिष्या ननु शारिकास्य
लल्लेश्वरीवास्ति महाप्रभावा ।
वैराग्यभावेन समुज्ज्वलन्ती
त्यागेन धैर्येण च पार्वतीव ॥३६॥

इन गुरुदेव की प्रधान शिष्या श्री शारिका देवी हैं, जो महान प्रभाव
से युक्त मानो लल्लेश्वरी ही हैं। वैराग्य की भावना से देदीप्यमान बनी हुई,
त्याग से और धैर्य से मानो देवी पार्वती ही हैं ॥३६॥

नारीसहस्रैरभिवन्द्यमाना
यथार्थनाम्नी पुरलेव यास्ति ।
सा शांतिदा विष्णुपदीव शुभ्रा
प्रभा प्रभेवास्य महेश्वरस्य ॥३७॥

हजारों स्त्रियों से पूजित होती हुई, दुर्गा के ही समान सार्थक नाम
वाली, महेश्वर गुरुराज की प्रभा ही जैसी प्रभा देवी, भगवान विष्णु की निर्मल
चरण-द्वयी के समान (दर्शन-मात्र से) शांति प्रधान करने वाली है ॥३७॥

देवीद्वयेनाश्रम एष शोभां
बिभर्त्ति दृग्भ्यां वदनं यथा, तत् ।
जानाति लोको ननु कथ्यमेत-
न्नमाम्यहं तं गुरुदेवमेकम् ॥३८॥

जैसे दो नेत्रों से मुख शोभायमान होता है, उसी प्रकार इन दो देवियों
से यह आश्रम अनुपम शोभा को धारण कर रहा है। यह केवल कहने की
ही बात नहीं, प्रत्युत इस बात से सभी लोग परिचित ही हैं। उसी अद्वितीय
गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं ॥३८॥

श्रद्धास्पदौ पूज्यतमौ स्मरामि
कीर्त्या वरेण्यौ पितरौ प्रभायाः ।
श्रीशारिकायाश्च शिवस्वरूपौ
श्रीराधिका श्रीजयलालसंज्ञौ ॥३९॥

मैं श्रद्धेय, पूजनीय तथा यश से वरणीय प्रभादेवी तथा शारिका देवी के माता पिता का भी स्मरण करता हूं, जो दम्पति साक्षात् शिवरूप ही थे, और जिनका नाम श्रीराधिकारानी तथा श्री जियालाल जी था ।।३९।।

याभ्यामङ्कुरिता भक्तिः पुत्र्या बाल्ये गुरौ हृदि ।
न वारिता मनुष्याणां सहजासूयया सकृत् ॥४०॥

स्वाभाविकञ्च वात्सल्यं हित्वा धृत्यानुमोदिता ।
नमस्ताभ्यां महात्मभ्यां दधद्भ्यां श्रेय उत्तमम् ॥४१॥

(युगलकम्)

जन-समाज में स्वाभाविक ईर्षा के होने पर भी जिन्होंने अपनी पुत्रियों के हृदय में अंकुरित गुरु-भक्ति को एक बार भी नहीं हटाया अपितु अपने स्वाभाविक वात्सल्य को एक ओर रखकर और धैर्य का आश्रय लेकर इनकी इस भक्ति का अनुमोदन ही किया । ऐसे प्रतिसमय कल्याण के ही पात्र-भूत महात्मातुल्य दम्पति को मैं नमस्कार करता हूँ ।।४०, ४१।।

स्वस्मिन्सखाप्यस्य च नीलकण्ठः
शिष्यत्वमग्र्यं खलु मन्यमानः ।
छायेव नित्यं ह्यनुवर्तते स्म
नमाम्यहं तं करुणैकमूर्तिम् ॥४२॥

श्री नीलकण्ठ जी (बकाया) यद्यपि हमारे गुरुराज के बाल-मित्र ही थे, तथापि वे अपने को महाराज जी का प्रधान शिष्य ही मानते थे और सदा छाया की भांति ही गुरुदेव के अनुगामी बने रहते थे । उन्हीं करुणा की मूर्ति गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं ।।४२।।

श्रीजानकीनाथमहोदयो हि
बभूव शिष्यः सुमहान् महात्मा ।
पात्रं कृपायाः स बभूव यस्य
नमाम्यहं तं गुरुमूर्तिमीशम् ॥४३॥

हमारे श्रीगुरुदेव का एक शिष्य महामना जानकीनाथ जी अच्छी कोटि महात्मा थे, वह भी जिन की कृपा का पात्र बना था, उन्हीं ईश्वर-समान -मूर्ति को मैं नमस्कार करता हूं ॥४३॥

वैदेशिकाश्चैव फिरङ्गवासिनो
ये भारतीया निजराज्यवासिनः ।
वृद्धाश्च बालास्तरुणाः सुखार्थिनो
ज्ञानेच्छुका वा परमार्थकांक्षिणः ॥४४॥

आगत्य ते यं शरणाभिकांक्षिण-
स्सद्यो लभन्तेऽपि मनोऽभिवाञ्छितम् ।
जितेन्द्रियं ज्ञाननिधिं तपोधनं
नमाम्यहं तं सततं वरप्रदम् ॥४५॥

(युगलकम्)

शरण की इच्छा रखने वाले, विदेशी-जन और अपने ही देश में रहने ाले भारतीय-जन, सुख की अभिलाषा रखने वाले क्या बूढे क्या बालक, क्या वक, सभी जन ज्ञान की पिपासा या परमार्थ की अभिलाषा से जिनके पास ाकर तत्क्षण मनोवांछित फल को प्राप्त करते हैं, उन्हीं इन्द्रियजित, ज्ञान के डार, तपोधन से युक्त वरदाता श्रीगुरुदेव को मैं सदा प्रणाम करता हूं ४४, ४५॥

आचार्यरामेश्वरझा महात्मा
प्रकाण्डपाण्डित्यविभूषितोऽसौ ।
वेदान्तशैवागमपारदर्शी
सद्धर्मवृद्धोऽपि च मैथिलो यः ॥४६॥

सोऽप्यागतो दर्शनहेतुमस्य
कृता हि तेनापि गुरुस्तुतिश्च ।
तथैव चान्ये बहवो विपश्चितो
वृद्धा युवानो बहवो विदुष्यः ॥४७॥

वैदेशिका भारतवासिनोऽपि
गायन्ति गीतानि तु यस्य कीर्त्याः ।
नमन्ति ते यं सततं हि भक्त्या
तं दैशिकं नौमि च विश्ववन्द्यम् ॥४८॥

(तिलकम्)

महामना श्री आचार्य रामेश्वर झा, जो मिथिला देश के रहने वाले चोटी के विद्वान, वेदान्त तथा शैव-दर्शन के तत्त्व से भली भांति परिचित तथा परिपक्व ज्ञानी माने जाते हैं, वे भी हमारे गुरुदेव का दर्शन करने काश्मीर आये और उन्होंने भी गुरु-स्तुति की रचना की। इसी भांति अन्य ब्राह्मण, वृद्ध, युवक, विद्वान, विदेश में रहने वाले तथा भारतवासी जन भी जिनकी कीर्ति के गीत गाते हैं, तथा जिन हमारे गुरुदेव के प्रति भक्तिपूर्ण भावना से सदा प्रणाम करते हैं, उन्हीं जगत के द्वारा वन्दनीय गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं ॥४६, ४७, ४८॥

यं सर्वलोकाः प्रणमन्ति भक्त्या
दृष्ट्वा हि यं ते सुखिनो भवन्ति ।
स्मर्यते चापि सदा प्रवासिभि-
र्नमाम्यहं तं स्वगुरुं महेशम् ॥४९॥

जिन हमारे गुरुदेव को सभी जन भक्ति से प्रणाम करते हैं, जिनका दर्शन-मात्र करने से ही सभी सुखी बनते हैं तथा विदेश में वास करने वाले भक्त-जन भी जिनका स्मरण करते रहते हैं, उन्हीं महेश्वर-रूप अपने श्रीगुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं ॥४९॥

पञ्चाशिका साम्बकृता हि येन
स्तोत्रावली पूज्यतमोत्पलस्य ।
भाषानुवादैः समलंकृते ते
तथैव चान्ये बहवोऽपि ग्रन्थाः ॥
प्रकाशिता लोकहिताय येन
तस्मै नमो मे गुरवे प्रवक्त्रे ॥५०॥

जिन हमारे गुरुदेव ने (भगवान श्रीकृष्ण के पुत्र) श्री साम्ब जी द्वारा
चित 'साम्बपञ्चाशिका' तथा श्रीमान उत्पलदेव जी द्वारा निर्मित श्री शिव-
तोत्रावली को हिन्दी टीका से अलंकृत किया, और साथ ही अन्य भी बहुतेरे
ोटे छोटे ग्रन्थों को लोकोपकार के लिये प्रकाशित किया, उन्हीं प्रवचनशील
रे गुरुदेव को प्रणाम हो ॥५०॥

श्रीशारदादेशमहार्हरत्नं
श्रीशारदानुग्रहसौम्यपात्रम् ।
देव्या श्रिया चापि विभूषितं तं
नमाम्यहं स्वं गुरुमेव सन्ततम् ॥५१॥

मैं अपने सद्गुरु को निरन्तर रूप से प्रणाम करता हूं, जो श्रीशारदा-
श अर्थात् काश्मीर देश के एक अमूल्य रत्न हैं, सरस्वती देवी के अनुग्रह के
न्दर पात्र बने हैं अर्थात् जो तथ्य रूप में विद्वान् हैं तथा जो मोक्ष-लक्ष्मी से
लंकृत हैं ॥५१॥

शैवादिसच्छास्त्रमहासमुद्रं
निर्मथ्य रत्नानि* समुद्धृतानि ।
लोकोपकाराय प्रदर्शितानि
येनैव देवोऽस्तु स मे सहायः ॥५२॥

जिन्होंने शैव-शास्त्र रूपी महान् समुद्र का मन्थन करके उसमें से
ने हुए श्लोक रूपी रत्नों को निकालकर लोकोपकार के लिए प्रकाशित
त्या, वे ही देव-तुल्य गुरु-देव मेरे सहायक बने रहें ॥५२॥

* 'स्तुति-चन्द्रिका तथा क्रमनयप्रदीपिका'—इन दो ग्रन्थों की ओर यहां
संकेत किया गया है ।

सिद्धिप्रदं यस्य निशम्य वाक्यं
जडोऽपि मूर्खोऽप्यतिचञ्चलोऽपि ।
प्राप्नोति बुद्धिञ्च सुखञ्च शांतिं
नमाम्यहं वै निखिलाद्भुतं तम् ॥५३॥

जिन गुरुदेव की सिद्धि-प्रदा वाणी सुनकर जड अर्थात् मोटी बुद्धि वाला, मूर्ख तथा चञ्चल स्वभाव वाला व्यक्ति (क्रमपूर्वक) बुद्धि, सुख और शांति को प्राप्त करता है, उन्हीं सर्वभाव से अद्भुत स्वरूप वाले गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं ॥५३॥

जगत्प्रसिद्धं नृवरं मुनीश्वर-
माचार्यवर्यं विदुषां वरेण्यम् ।
सर्वे गुणा यं हि सदाश्रयन्ति
नमाम्यहं तं सकलाश्रयो यः ॥५४॥

जिन जगत में प्रसिद्ध, मनुष्यों में श्रेष्ठ, मुनीश्वर, विद्वानों के द्वारा वन्दनीय परम-उत्कृष्ट आचार्य गुरुदेव को, सभी गुण अपना आश्रय बनाते हैं, उन्हीं सभी के आश्रयदाता गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं ॥५४॥

स्निग्धा हि दृष्टिः करुणाभरा च
रूपं हि सौम्यं प्रियदर्शनञ्च ।
गिरा हि यस्यामृतवर्षिणी च
नमाम्यहं तं सततं गुरूत्तमम् ॥५५॥

जिन गुरुवर्य की दृष्टि करुणा से परिपूर्ण तथा स्नेह से भरी हुई है, जो देखने में प्रियदर्शी तथा सौम्य-मूर्ति वाले हैं तथा जिनकी वाणी अमृत की वर्षा करने वाली है, उन्ही उत्तम श्रीगुरुदेव को मैं सदा नमस्कार करता हूं ॥५५॥

गार्हस्थचिन्ताचलितं स्वरूपा-
दुद्वेगमाप्नोति यदा हि चेतः ।
स्मृतिस्तदा यस्य सुखावहा तं
स्थितिप्रदं नौमि गुरुं कृपालुम् ॥५६॥

गृहस्थ संबन्धी चिन्ताओं से जिस समय मन अपने स्वरूप से विचलित होकर क्षोभित बनता है, उस समय जिन गुरु-महाराज की स्मृति उसे सुख प्रदान करती है, उन्हीं स्थिति-प्रद अर्थात् मन को सावधान बनाने वाले कृपालु गुरु-देव को मैं नमस्कार करता हूं ॥५६॥

श्रिया सदा शारिकया सुसेवितं
तथैव भक्त्या प्रभया सुपूजितम् ।
महोत्सवे सर्वजनाभिनन्दितं
नमाम्यहं तं गुरुमेव सन्ततम् ॥५७॥

मोक्षलक्ष्मी से युक्त श्री शारिका देवी जिनकी भली भांति देख-भाल करती हैं, उसी भांति प्रभादेवी जिनकी पूजा भक्ति से करती हैं, तथा महान उत्सवों पर जो सभी जनता से पूजे जाते हैं, उन्हीं गुरुदेव को मैं सदा नमस्कार करता हूं ॥५७॥

यस्य प्रसादान्न भयं न दुःखं
सद्यो भवत्येव सुखञ्च शांतिः ।
नश्यन्ति विघ्नाः परमार्थमार्गे
तं रक्षितारं गुरुमानतोऽस्मि ॥५८॥

जिनकी दया से मनुष्य के सभी भय तथा दुःख नष्ट हो जाते हैं तथा तत्क्षण ही सुख और शांति प्राप्त होती है, (इसके अतिरिक्त) परमार्थ-मार्ग में सभी विघ्न दूर हो जाते हैं, उन्हीं (सब ओर से) रक्षा करने वाले श्रीगुरुदेव को मैं नत-मस्तक होकर नमस्कार करता हूं ॥५८॥

गुरुप्रसादाच्च सुखी सदाहं
गुरुप्रसादाच्च सदा शिवोऽहम् ।
तस्मात्सदा तस्य दयाभिकाङ्क्षी
तत्पादपद्मं हि सदाश्रयेऽहम् ॥५९॥

गुरु-कृपा के फल-स्वरूप मैं सदा सुखी हूं। गुरु-कृपा के द्वारा ही मैं शिवावस्था पर ठहरा हुआ हूँ। अतः गुरुदेव की दया की अभिलाषा से मैं उन के चरण-कमलों का ही सदा आश्रय लेता हूँ ॥५९॥

नमाम्यहं श्रीगुरुपादुकाद्वयं
वदाम्यहं श्रीगुरुदेवनाम।
करोम्यहं श्रीगुरुपादपूजनं
भजाम्यहं तं सततं शरण्यम् ॥६०॥

मैं श्रीगुरु-देव की पादुका को नमस्कार करता हूँ। मैं श्रीगुरु-देव का का नाम सदा जपता रहता हूं। मैं श्रीगुरु-देव के चरणों की पूजा करता रहता हूँ तथा उन्हीं शरणदाता का मैं सदा भजन करता रहता हूँ ॥६०॥

या कापि नारी गुरुभक्तियुक्ता
पठिष्यति स्तोत्रमिदञ्च पुण्यम्।
सौभाग्यवत्येव सदा लसन्ती
भवेत्सतीनामपि सा हि मुख्या ॥६१॥

गुरु-भक्ति से संपन्न बनी हुई जो भी कोई स्त्री इस पुण्य-स्तोत्र पाठ करेगी, वह सौभाग्यवती बनकर सदा प्रफुल्लित रहेगी तथा सभी पतिव्रता स्त्रियों में श्रेष्ठ मानी जायेगी ॥६१॥

भवन्तु सर्वे गुरुदेवशिष्या
धर्मप्रियाः पापपराङ्मुखाश्च।
दया सदास्मासु चकास्ति यस्य
नमाम्यहं तं गुरुवर्यमीशम् ॥६२॥

हमारे गुरु-देव के सभी शिष्य धर्म में प्रीति रखने वाले तथा पाप से दूर रहने वाले बनें। जिनकी दया सदा हमारे पर बनी रहती है, ऐसे ईश्वर-तुल्य सद्गुरु को मैं नमस्कार करता हूं ॥६२॥

२२
१९
४२

जयति श्रीगुरोरेष
प्रादुर्भावदिनोत्सवः ।
समागता जना यस्मिन्
भवन्ति विमलाशयाः ॥६३॥

श्रीगुरु-देव के उस महान् जन्मोत्सव की जय हो, जिस शुभदिवस पर एकत्रित हुए सभी भक्त-जन निर्मल तथा आनन्द-पूर्ण हृदय वाले बन जाते हैं ॥६३॥

इति शिवम् ।

समाप्ता चेयं कौलेत्युपाह्वश्री-
जियालालरचिता गुरुपरिचयात्मिका
श्रीपादुकास्तुतिः ।

यद्धीबलेन विश्वं भक्तानां शिवपथं भाति
तमहमवधानरूपं सद्गुरुममलं सदा वन्दे ॥४॥

मैं निर्मल अवधान-स्वरूप उस गुरुदेव की वन्दना सदा करता हूं जिस अवधान को अपनी बुद्धि में ठहराने से भक्त-जनों को यह सारा संसार शिव-मार्ग ही दीख पड़ता है ॥४॥

उदयावभासचर्वणलीलां विश्वस्य या करोत्यनिशम् ।
आनन्दभैरवीं तां विमर्शरूपामहं वन्दे ॥५॥

मैं उस पूर्ण-अहं-विमर्श-रूप आनन्दभैरवी को प्रणाम करता हूँ, जो इस संपूर्ण-विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा संहार रूप लीला लगातार करती रहती है ॥५।

अर्चयति भैरवं या निश्चयकुसुमैः सुरेशपत्रस्था ।
प्रणमामि बुद्धिरूपां ब्रह्माणीं तामहं सततम् ॥६॥

मैं उस बुद्धि-रूप ब्रह्माणी (ब्राह्मी भगवती) को सदा प्रणाम करता हूं, जो अग्नि-दिशा (दक्षिण-पूर्व-दिशा) में ठहरी हुई अभिमान रूपी फूलों से भैरवनाथ को पूजती है ॥६॥

कुरुते भैरवपूजामनलदलस्थाभिमानकुसुमैर्या ।
नित्यमहंकृतिरूपां वन्दे तां शाम्भवीमम्बाम् ॥७॥

मैं उस अहंकार-रूप शाम्भवी माता (माहेश्वरी) की वन्दना सदा करता हूँ, जो अग्नि दिशा (दक्षिण-पूर्व-दिशा) में ठहरी हुई अभिमान रूपी फूलों से भैरवनाथ को पूजती है ॥७॥

विदधाति भैरवार्चां दक्षिणदलगा विकल्पकुसुमैर्या ।
नित्यं मनःस्वरूपां कौमारीं तामहं वन्दे ॥८॥

मैं उस मन ही स्वरूप वाली कौमारी नामक शक्ति की वन्दना नित्य करता हूं, जो दक्षिण दिशा में ठहरी हुई विकल्प रूपी पुष्पों से चिन्नाथ की पूजा करती रहती है ॥८॥

नैऋतदलगा भैरवमर्चयते शब्दकुसुमैर्या ।
प्रणमामि श्रुतिरूपां नित्यं तां वैष्णवीं शक्तिम् ॥९॥

मैं उस श्रवणेन्द्रिय रूपी वैष्णवी नाम वाली देवी को नित्य नमस्कार करता हूँ, जो नैऋत-दल अर्थात् दक्षिण-पश्चिम-कोण में ठहरी हुई शब्द रूपी पुष्पों से भैरव-नाथ की पूजा करती रहती है ॥९॥

पश्चिमदिग्दलसंस्था हृदयहरैः स्पर्शकुसुमैर्या ।
तोषयति भैरवं तां त्वग्रूपधरां नमामि वाराहीम् ॥१०॥

मैं उस त्वचा रूप वाली वाराही भगवती को प्रणाम करता हूँ, जो पश्चिम (वरुण-दिशा) में ठहरी हुई हृदय-हारी स्पर्श रूपी पुष्पों से भैरव-देव को सन्तुष्ट करती है ॥१०॥

वरतररूपविशेषैर्मारुतदिग्दलनिषण्णदेहा या ।
पूजयति भैरवं तामिन्द्राणीं दृक्तनुं वन्दे ॥११॥

मैं उस नयन-स्वरूप इन्द्राणी भगवती की वन्दना करता हूँ, जो वायु-दिशा (पश्चिम-उत्तर-कोण) में ठहराये हुए देह वाली उत्तम उत्तम सुन्दर रूपों से भैरवनाथ को पूजा करती रहती है ॥११॥

धनपतिकिसलयनिलया या नित्यं विविधषड्रसाहारैः ।
पूजयति भैरवं तां जिह्वाभिख्यां नमामि चामुण्डाम् ॥॥१२॥

मैं उस जिह्वा नाम वाली चामुण्डा भगवती को प्रणाम करता हूँ, जो कुबेर-दिशा अर्थात् उत्तर दिशा में ठहरी हुई सदैव नाना प्रकार वाले छः रसों (मीठा, नमकीन, तीखा, कसैला, खट्टा और कडवा) से भैरवनाथ को पूजती है ॥१२॥

ईशदलस्था भैरवमर्चयते परिमलैर्विचित्रैर्या ।
प्रणमामि सर्वदा तां घ्राणाभिख्यां महालक्ष्मीम् ॥१३॥

मैं उस घ्राणेन्द्रिय रूप महालक्ष्मी अर्थात् योगीश्वरी देवी को सदा प्रणाम करता हूँ, जो ईशान-कोण अर्थात् उत्तर-पूर्व-कोण में ठहरी हुई नाना

प्रकार के केसर-चन्दन आदि परिमलों (सुगंधित-पदार्थों) से भैरव की पूजा करती है ॥१३॥

षड्दर्शनेषु पूज्यं षट्त्रिंशत्तत्त्वसंवलितम् ।
आत्माभिख्यं सततं क्षेत्रपतिं सिद्धिदं वन्दे ॥१४॥

मैं उस जीवात्मा रूपी सिद्धि-प्रद क्षेत्रपाल को सदा प्रणाम करता हूँ, जो छः दर्शनों में पूज्य माना गया है और जो छत्तीस तत्वों से संवलित अर्थात् घेरा हुआ रहता है ॥१४॥

संस्फुरदनुभवसारं
सर्वान्तः सततसन्निहितम् ।
नौमि सदोदितमित्थं
निजदेहगदेवताचक्रम् ॥१५॥

इस प्रकार मैं अपने ही शरीर में ठहरे हुए सदा उदित समस्त-देवता चक्र की स्तुति करता हूँ, जो स्वानुभव-गम्य और सभी जड़-चेतन आदि वस्तुओं के भीतर ठहरा हुआ है ॥१५॥

इति श्रीमदाचार्याभिनवगुप्तपादविरचितं
देहस्थदेवताचक्रस्तोत्रम् ।
इति शिवम् ।

ॐ

अथ

श्रीश्रीज्ञाननेत्रपादरचितं
कालिकास्तोत्रम् ।

सिततरसंविदवाप्यं सदसत्कलनाविहीनमनुपाधि ।
जयति जगत्त्रयरूपं नीरूपं देवि ! ते रूपम् ॥१॥

एकमनेकाकारं प्रसृतजगद्व्याप्ति विकृतिपरिहीनम् ।
जयति तवाद्वयरूपं विमलमलं चित्स्वरूपाख्यम् ॥२॥

जयति तवोच्छलदन्तः स्वच्छेच्छायाः स्वविग्रहग्रहणम् ।
किमपि निरुत्तरसहजस्वरूपसंवित्प्रकाशमयम् ॥३॥

वान्त्वा समस्तकालं भूत्या भंकारघोरमूर्त्तिमपि ।
निग्रहमस्मिन्कृत्वानुग्रहमपि कुर्वती जयसि ॥४॥

कालस्य कालि ! देहं विभज्य मुनिपञ्चसंख्यया भिन्नम् ।
स्वस्मिन्विराजमानं तद्रूपं कुर्वती जयसि ॥५॥

भैरवरूपी कालः सृजति जगत् कारणादिकीटान्तम् ।
इच्छावशेन यस्याः सा त्वं भुवनाम्बिका जयसि ॥६॥

जयति शशाङ्कदिवाकरपावकधामत्रयान्तरव्यापि ।
जननि ! तव किमपि विमलं स्वरूपरूपं परं धाम ॥७॥

एकं स्वरूपरूपं प्रसरस्थितिविलयभेदतस्त्रिविधम् ।
प्रत्येकमुदयसंस्थितिलयविश्रमतश्चतुर्विधं तदपि ॥८॥

इति वसुपंचकसंख्यं विधाय सहजस्वरूपमात्मीयम् ।
विश्वविवर्त्तावर्त्त प्रवर्तकं जयति ते रूपम् ॥९॥

(युगलकम्)

सदसद्विभेदसूतेर्दलनपरा कापि सहजसंवित्तिः ।
उदिता त्वमेव भगवति ! जयसि जयाद्येन रूपेण ॥१०॥

जयति समस्तचराचरविचित्रविश्वप्रपंचरचनोर्मि ।
अमलस्वभावजलधौ शान्तं कान्तं च ते रूपम् ॥११॥

सहजोल्लासविकासप्रपूरिताशेषविश्वविभवैषा ।
पूर्णा तवाम्ब ! मूर्तिर्जयति परानन्दसंपूर्णा ॥१२॥

कवलितसकलजगत्त्रयविकटमहाकालकवलनोद्युक्ता ।
उपभुक्तभावविभवप्रभवापि कृशोदरी जयसि ॥१३॥

रूपत्रयपरिवर्जितमसमं रूपत्रयान्तरव्यापि ।
अनुभवरूपमरूपं जयति परं किमपि ते रूपम् ॥१४॥

अव्ययमकुलममेयं विगलितसदसद्विवेककल्लोलम् ।
जयति प्रकाशविभवस्फीतं काल्याः परं धाम ॥१५॥

ऋतुमुनिसंख्यं रूपं विभज्य पंचप्रकारमेकैकम् ।
दिव्यौघमुद्गिरन्ती जयति जगत्तारिणी जननी ॥१६॥

भूदिग्गोखगदेवीचक्रलसज्ज्ञानविभवपरिपूर्णम् ।
निरुपमविश्रांतिमयं श्रीपीठं जयति ते रूपम् ॥१७॥

प्रलयलयान्तरभूमौ विलसितसदसत्प्रपंचपरिहीनाम् ।
देवि ! निरुत्तरतरां नौमि सदा सर्वतः प्रकटाम् ॥१८॥

यादृङ् महाश्मशाने दृष्टं देव्याः स्वरूपमकुलस्थम् ।
तादृग् जगत्त्रयमिदं भवतु तवाम्ब ! प्रसादेन ॥१९॥

इत्थं स्वरूपस्तुतिरभ्यधायि
सम्यक्समावेशदशावशेन ।
मया शिवेनास्तु शिवाय सम्यङ्
ममैव विश्वस्य तु मंगलाय ॥२०॥

कृतिरियं श्रीश्रीज्ञाननेत्रपादाना-
मिति शिवम्

ॐ

नमः शिवाय

ओमिति स्फुरदुरस्यनाहतं गर्भगुम्फितसमस्तवाङ्मयम् ।
दन्ध्वनीति हृदि यत्परं पदं तत्सदक्षरमुपास्महे महः ॥१॥

भानुना तुहिनभानुना बृहद्भानुना च विनिवर्तितं न यत् ।
येन तज्झगिति शान्तिमान्तरं ध्वान्तमेति तदुपास्महे महः ॥२॥

तर्ककर्कशगिरामगोचरं स्वानुभूतिसमयैकसाक्षिणम् ।
मीलिताखिलविकल्पविप्लवं पारमेश्वरमुपास्महे महः ॥३॥

पद्मसद्मकरमर्दलालितं पद्मनाभनयनाब्जपूजितम् ।
पद्मबन्धुमुकुटांशुरञ्जितं पादपद्मयुगमैश्वरं स्तुमः ॥४॥

यदि हरोऽसि तदा हर दुष्कृतं यदि भवोऽसि तदा भव भूतये ।
यदि शिवोऽसि तदा कुरु मे शुभं शमय दुःखमिदं यदि शंकरः ॥५॥

शरणं तरुणेन्दुशेखरः शरणं मे गिरिराजकन्यका ।
शरणं पुनरेव तावुभौ शरणं नान्यदुपैमि दैवतम् ॥६॥

सदुपायकथास्वपण्डितो हृदये दुःखशरेण खण्डितः ।
शशिखण्डशिखण्डमण्डनं शरणं यामि शरण्यमीश्वरम् ॥७॥

रामनामजपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम् ।
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥८॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।
पारिजाततरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ॥९॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥१०॥

स्वैरेव यद्यपि गतोऽहमधः कुकृत्यै-
स्तत्रापि नाथ तव नास्म्यवलेपपात्रम् ।
दृप्तः पशुः पतति यः स्वयमन्धकूपे
नोपेक्षते तमपि कारुणिको हि लोकः ॥११॥

मानुष्यनावमधिगम्य चिरादवाप्य
निस्तारकञ्च करुणाभरणं भवन्तम् ।
यस्याभवद्भरवशस्तरितुं भवाब्धिं
सोऽहं ब्रुडामि यदि कस्य विडम्बनेयम् ॥१२॥

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे
जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि ।
न कापि भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे
तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे ॥१३॥

वामे भूमिसुता पुरश्च हनुमान् पश्चात् सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु च ।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥१४॥

तव च काचन न स्तुतिरम्बिके
सकलशब्दमयी किल ते तनुः ।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो
मनसिजासु बहिष्प्रसरासु च ॥१५॥

इति विचिन्त्य शिवे शमिताशिवे
जगति जातमयत्नवशादिदम् ।
स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता
न खलु काचन कालकलापि मे ॥१६॥

(युगलकम)

ऊनाधिकमविज्ञातं पौर्वापर्यविवर्जितम ।
यच्चावधानरहितं बुद्धेर्विस्खलितं च यत् ॥१७॥

तत्सर्वं मम सर्वेश भक्तस्यार्तस्य दुर्मतेः ।
क्षन्तव्यं कृपया शंभो ! यतस्त्वं करुणापरः ॥१८॥

अनेन स्तोत्रयोगेन तवात्मानं निवेदये ।
पुनर्निष्कारणमहं दुःखानां नैमि पात्रताम् ॥१९॥

(तिलकम्)

ओं शांतिः ! शांतिः !! शांतिः !!!

श्रीशाम्बस्तुतिः

स्वयं प्रकाशाय महेश्वराय स्पन्दात्मिकायै जगदम्बिकायै ।
मदात्मने वै मम राजलक्ष्म्यै नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥१॥

सर्वार्थरूपाय च सर्ववाचे क्रियात्मिकायै किलकारकाय ।
बीजस्वरूपाय लतात्मिकायै नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥२॥

ज्ञानस्वरूपाय विशुद्धबुद्ध्यै पित्रे च मात्रे जगतोऽखिलस्य ।
मात्रे च मानाय मिताय मित्यै नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥३॥

ऋताभिधायै गतिदर्शिकायै स्थितस्वरूपाय च सत्यनाम्ने ।
तपोऽभिधायाभिससिद्धतायै नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥४॥

मोक्षस्वरूपाय च मोहमूर्त्यै विकल्पनायै ह्यविकल्पधाम्ने ।
भात्यै विभात्रेऽहमिदन्तयैव नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥५॥

उन्मेषमय्यै च निमेषमय्यै स्रष्ट्रे च धत्रे च विलोपकर्त्रै ।
धर्मात्मिकायै विभुधर्मधाम्ने नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥६॥

समुच्छलन्त्यै जगदात्मिकायै शान्तस्वरूपाय सदाशिवाय ।
सते भवन्त्यै भवते च सत्यै नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥७॥

कालाय काल्यै कलनात्मिकायै देव्यै च देवाय जगन्नटाय ।
ईशाय चैश्वर्यशरीरवत्यै नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥८॥

प्राकट्यगुह्यादिविभासिकायै गूढात्मनेवैप्रकटात्मने च ।
परस्परं वै ह्युभयात्मने ते नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥९॥

यया विना यो न बिभर्त्तिरूपम् पृथग् यतो या न दधाति सत्ताम् ।
तदात्मिकायै च तदात्मने च नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥१०॥

यैवास्ति सर्वं किल यस्य चैका यस्याश्च सर्वं ननु योऽद्वितीयः ।
तस्यै च तस्मै च मदात्मने वै नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥११॥

कृष्णाय नमः

भ्रमद्भ्रान्तैरुक्ते स्वमतिसदृशेतत्त्वनिवहे
कथं लभ्याशान्तिर्नयनपथदूरेतनुभृता ।
विमृश्यैवं कृष्णे मधुरसुभगेपीतवसने
वधानद्राक्स्नेहं परमपुरुषेशान्तिसुखदे ॥

दुर्गायै नमः

शिवो रामः कृष्णो भवसि सहसा पौंस्नवपुषा
सतीसीताराधाविहरसि तथा शक्तिजनुषा ।
गिरा देवी भूत्वा हरसि हृदयं स्निग्धवचसा
त्वमेवैका दुर्गे रचयसि महानाटकमिदम् ॥

अनिर्वाच्यंरूपं वहसि परमं नित्यममलम् ।
अलक्ष्यं तल्लक्ष्यं जननिदयया त्वं प्रकुरुषे ।
भजे विश्वव्याप्तां परमशिवसंस्थामपि पुनः
स्फुरज्ज्योतीरूपामहमितिपदद्योतितततनुम् ॥

समाप्तेयं श्रीमदाचार्य रामेश्वर झा
प्रणीता प्रकीर्णपद्यस्तुतिः ।